अ. भा. साधुमार्गी जैन संस्कृति-रक्षक संघ साहित्य रत्नमाला का ५६ वाँ रत्न

श्री उपासकदशांग सूत्र

अनुवादक—

श्री घीसुलालजी पितलिया

प्रकाशक—

श्री अखिल भारतीय साधुमार्गी
जैन संस्कृति-रक्षक संघ
सैलाना (म.प्र.)

श्री उपासकदशांग सूत्र के संपादन में प्रयुक्त सामग्री

१ श्री उपासकदशांग—अनुवादिका—साध्वी विनयश्रीजी—श्री हिंदी जैनागम प्रकाशक सुमति कार्यालय, जैन प्रेस कोटा से प्रकाशित, टीका, टीकानुवाद सहित ।

२ अभिधान राजेंद्र कोष सातों भाग ।

३ अंगसुत्ताणि—उवासगदसाओ—संपादक—मुनि नथमलजी प्रकाशक—जैन विश्व भारती लाडनूं (राजस्थान)

४ उपासकदशांग सूत्र—अनुवादक—शास्त्रोद्धारक पूज्यश्री अमोलकऋषिजी म. सा. । ला॰ सुखदेवसहायजी ज्वालाप्रसादजी, हैदराबाद द्वारा प्रकाशित ।

५ उपासकदशा अर्थ—श्री वाडीलाल मोतीलाल शाह, अहमदाबाद ।

६ समर्थ-समाधान भाग १, २ ।

७ मोक्षमार्ग—लेखक श्रीमान् रतनलालजी डोशी सैलाना, प्रकाशक—अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन संस्कृति रक्षक संघ, सैलाना । द्वितीयावृत्ति ।

८ जैन प्रकाश—पूज्यश्री अमोलकऋषिजी म. सा. ।

९ जयध्वज—(पूज्यश्री जयमलजी म. सा. का जीवन वृत्त) ।

१० आवश्यक सूत्र सार्थ—पाथर्डी ।

११ 'जिनवाणी' श्रावकधर्म विशेषांक में 'श्रावक प्रतिमाएं चर्चा परिचर्चा' नामक पृ. २... ४१ तक का लेख । लेखक—पं. श्री पारसमुनिजी म. सा. । जनवरी ७० ।

१२ सुत्तागमे भाग १—श्री पुप्फ भिक्खुजी सम्पादित ।

१३ सुत्तागमे भाग २—श्री पुप्फ भिक्खुजी सम्पादित । इत्यादि ।

भगवान् के आदर्श श्रमणोपासक

जिनोपदिष्ट द्वादशांगी का सातवाँ अंग 'उपासकदशांग सूत्र' है। इसमें श्रमण भगवान्-महावीर स्वामी के अनेक गृहस्थ-उपासकों में से दस उपासकों का चरित्र वर्णन है। भगवान् के आनन्द-कामदेव आदि उपासकों का चरित्र हम उपासकों के लिए पहले भी आदर्श (दर्पण) रूप था, आज भी है और आगे भी रहेगा। हम इस आदर्श को सम्मुख रख कर अपनी आत्मा, अपनी दशा और परिणति देखें और यथाशक्य अपनी त्रुटियाँ दोषों और कमजोरियों को निकाल कर वास्तविक श्रमणोपासक बनने का प्रयत्न करें, तो हमारा यह भव और परभव सुधर सकता है और हम एक भवावतारी भी हो सकते हैं। यदि अधिक भव करें, और सम्यक्त्व का साथ नहीं छोड़ें, तो पन्द्रह भव—देव और मनुष्य के कर के सिद्ध भगवान् बन सकते हैं।

वे श्रमणोपासक धन-वैभव, मान-प्रतिष्ठा और अन्य सभी प्रकार की पौद्गलिक सम्पदा से भरपूर एवं सुखी थे। परन्तु जब भगवान् महावीर प्रभु का पावन उपदेश सुना, तो उनकी दिशा और दशा दोनों पलट गई। भवाभिनन्दी और पुद्गलानन्दी मिट कर आत्मानन्दी बन गए। उनकी रुचि निवृत्ति की ओर बढ़ गई। भगवान् के प्रथम दर्शन में ही उन्होंने अपने व्यापार-व्यवसाय, आशा-तृष्णा और भोग-विलास पर अणुव्रत का ऐसा अंकुश लगाया कि वे वर्तमान स्थिति में ही संवरित रहे। साथ ही उनका लक्ष्य प्रवृत्ति घटा कर निवृत्ति बढ़ाने का भी रहा ही। इसीसे वे चौदह वर्ष तक व्यापार-व्यवसाय और गृह-परिवार में रह कर अणुव्रतादि का पालन करते रहे। तत्पश्चात् व्यवसायादि से निवृत्त हो कर उपासक-प्रतिमाओं की आराधना करने के लिए पौषधशाला में चले गये और विशेष रूप से धर्म की आराधना करने लगे।

अन्यों की संगति से बचे—

हम उन आदर्श श्रमणोपासकों के साधना जीवन पर दृष्टिपात करें, तो हमें उनकी भगवान्, श्रमण-निर्ग्रंथ और जिनधर्म के प्रति अगाध एवं अटूट श्रद्धा के दर्शन स्पष्ट रूप से होते हैं। वे एकान्त रूप से जिन-धर्म के ही उपासक थे। प्रतिमाराधना तो बाद की बात है। जिस दिन उन्होंने भगवान् के प्रथम दर्शन किये, प्रथम उपदेश सुना और सम्यग्दृष्टि तथा देशविरत श्रमणोपासक बने, उसी दिन, उसी समय उन्होंने भगवान् के सम्मुख यह प्रतिज्ञा कर ली कि—"मैं अब अन्ययूथिक देव अन्ययूथ के साध्वादि और जिनधर्म को छोड़ कर अन्ययूथ में गये—सम्यक्त्व एवं जिनधर्म से पतित हुए

वेशधारियों को वन्दन नहीं करूंगा, उनसे सम्पर्क भी नहीं रखूंगा, अपने पूर्व के देव-गुरु और साधर्मी से—जिन से उस दिन के पूर्व तक उसका सम्बन्ध रहा—हेय जान कर उन्होंने त्याग दिया।

आज के लौकिक-दृष्टि वाले कई जैनी अपना मार्ग भूल गये हैं। उन्होंने राजनैतिक एवं सामाजिक—लौकिक प्रचारकों से प्रभावित हो कर 'सर्वधर्म समभाव' का उनका घोष अपना लिया और अपना आदर्श छोड़ दिया। इस लौकिक प्रचार ने जैन उपदेशकों और लेखकों को भी प्रभावित किया। उन्होंने इस प्रचार को धर्म एवं शास्त्रसम्मत प्रमाणित करने के लिये 'अनेकान्त' का झूठा सहारा लेकर मिथ्यावाद चलाया और धर्मश्रद्धा की जड़ें ही काटने लगे। यदि उपासक-वर्ग उनके बहकाने में नहीं आवे और इन आदर्श उपासकों के साधनामय जीवन पर ध्यान दे, तो अपने धर्म में स्थिर रह सकते हैं।

समन्वय नहीं—

अनेकान्त को रक्षक के बदले भक्षक बनाने वालों की चाल से बचने के लिये श्रमणोपासक आनन्द की इस प्रतिज्ञा पर ध्यान देना चाहिये कि—"मैं अन्ययूथिकादि को मान-सम्मान नहीं दूंगा, बिना बोलाये बोलूंगा भी नहीं और उन्हें आहारादि का निमन्त्रण भी नहीं दूंगा।" कुछ दिन पूर्व तक जिन का उपासक था, भक्त था, परम श्रद्धा से एक मात्र उन्हें ही उपास्य एवं आराध्य मानता था, उन गोशालक के अपने घर आने पर भी जिसने आदर नहीं दिया, और इतना भी नहीं कहा कि—"आइये, बैठिये।" एक बराबरी के गृहस्थ के आने पर भी हम—"आइये, पधारिये, विराजिये," आदि शब्दों से आगत का स्वागत करते हैं, तब जिन्हें वर्षों तक परम आराध्य मान कर वन्दनादि करते रहे—सर्वोत्कृष्ट सम्मान देते रहे, उसी के आगमन पर मुख फेर कर उपेक्षा करना कितना खटकने वाला होगा—आज की दृष्टि में? आज के ऐसे लोगों की दृष्टि में यह सभ्यता के विरुद्ध व्यवहार है। ऐसे सभ्यतावादी लोग सद्दालपुत्र को 'कट्टरपंथी' या 'सम्प्रदायवादी' कह सकते हैं। किन्तु ऐसी बात नहीं है। ऐसा वही सोच सकता है जिसकी दृष्टि में चोर और साहूकार, कुलटा और सती, विष और अमृत में, एक बालक अथवा भोंदू के समान समादर हो। जो कांच और रत्न में समभावी हो। उस सुश्रावक ने समझ लिया कि ये लोगों को उन्मार्ग में ले जाने वाले हितशत्रु हैं जीवों को भवाटवी में भटका कर दुःखी करने वाले हैं, विष से भी अधिक भयानक हैं। इनकी तो छाया से भी बचना चाहिये। हम जब तक अनजान होते हैं, तबतक मित्र रूप में प्रिय लगने वाले ठग से घनिष्ठता रखते हैं, परन्तु ज्योंही उसकी असलियत ज्ञात हो जाती है, त्योंही उससे बच कर दूर रहने लगते हैं। यही बात कुप्रावचनिकों के विषय में समझनी चाहिये। इस प्रकार श्रमणोपासक श्रीआनन्दजी की प्रतिज्ञा और सकडालजी का गोशालक का आदर नहीं करना सर्वथा उचित है। ऐसा ही दूसरा उदाहरण ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र अ. ५ का श्रमणोपासक सुदर्शनजी का है, जिन्होंने अपने पूर्व के धर्म गुरु परिव्राजकाचार्य शुकजी का आदर नहीं किया था। परिव्राजकाचार्य सरल थे, सत्यान्वेषी थे।

सुदर्शनजी का परिवर्तन और अनादर उनके लिये भी लाभदायक हुआ और वे अपने शिष्यों के साथ निर्ग्रंथ-धर्म में दीक्षित होकर महात्मा थावच्चापुत्र अनगार के शिष्य बन गए और आराधक हो कर मुक्त होगए।

अन्ययूथिक देव और उसके गुरुवर्ग एवं अपने से निकल कर अन्ययूथ में मिले हुए के प्रति ही श्रमणोपासक का यह अनादर पूर्ण व्यवहार है, परन्तु अपमान करने का नहीं। गृहस्थ के साथ ऐसा व्यवहार नहीं होता, क्यों कि गृहस्थ से सम्बन्ध या तो पारिवारिक होता है, या सामाजिक एवं व्यावशायिक, विधर्मी से धार्मिक नहीं होता। अतएव उसका जो यथोचित आदर होता है, वह लौकिक आधार पर होता है और अन्यतीर्थी साधु तो मात्र धर्म से ही सम्बन्धित होते हैं।

आजकल अनेकान्त का मिथ्या सहारा लेकर अन्यों से समन्वय कर के उन्हें भी सच्चे मान कर आदर देने की तथाकथित जैन विद्वानों ने जो कुप्रवृत्ति अपनाई है, वह उपादेय नहीं है। यदि इस प्रकार का समन्वय श्रमण भगवान् महावीर प्रभु को मान्य होता, तो सद्दालपुत्र के नियतिवाद का खण्डन कर पुरुषार्थवाद का मण्डन नहीं करते और कुण्डकोलिक के नियतिवाद के खण्डन की सराहना नहीं करते, जबकि सम्यक् नियति को तो स्वीकार किया ही है और अन्य कारणों को भी स्वीकार करते हुए नियति मान्य की है। इससे स्पष्ट है कि स्याद्वाद एवं अनेकान्त सम्यक् हो और सिद्धांत के अनुकूल हो, तभी मान्य हो सकता है, अन्यथा वह मिथ्या होता है और अमान्य रहता है। जहां जिनेश्वर भगवंत के धर्मादेश से किञ्चित् भी असहमति हो, वहां उपेक्षा ही रहती है। जमाली आदि निन्हव एक को छोड़ कर सभी बातों में सहमत थे। केवल एक विषय की असहमति एवं विरोध के कारण वे मिथ्यादृष्टि एवं संघबाह्य ही माने गए। सुश्रद्धा के अभाव में विशुद्ध चर्या और आचार-धर्म का प्रतिपालन भी असम्यक् तथा संसार का ही कारण मानने वाला जैन दर्शन, गुड़ और गोबर को एकमेक करने वाले असम्यक् समन्वय को स्वीकार नहीं करता। अतएव आगमोक्त श्रमणोपासकों के चरित्र का ही अनुसरण करना हमारे लिये हितकारी होगा।

अरिहंत चेइयाइं प्रक्षिप्त है ?

आनन्दाध्ययन का "अरिहंत चेइयाइं" शब्द भी विवाद का कारण बना है। मनुष्य का अहं उसे जान-बूझ कर अभिनिवेशी (हठाग्रही) बना कर कुकृत्य करवाता है। 'अरिहंत चैत्य' शब्द भी मताग्रह के बल से मूलपाठ में जा बैठा। सब से पहले 'चेइयाइं' घुसा और उसके बाद 'अरिहंत' पहुँच कर जुड़ गया। टीका के शब्दों से भी लगता है कि 'अरिहंत' शब्द टीकाकार द्वारा बताये हुए लक्षण के सहारे से मूलपाठ में घुस गया हो। सम्बन्धित पाठ का संस्कृत रूप टीका में इन अक्षरों में है—

"अन्ययूथिक परिगृहीतानि वा चैत्यानि"

इन अक्षरों के बाद टीकाकार ने "—अर्हत्प्रतिमा लक्षणानि" अक्षरों से अन्ययूथिक परिगृहीत के लक्षण के रूप में ये शब्द लिखे हैं। यदि टीकाकार के समक्ष मूल में 'अरिहंत चेइयाइं' शब्द होता, तो संस्कृत रूप—"अन्ययूथिक परिगृहीतानि अर्हत् चैत्यानि" होता।

इतना होने पर भी वह पक्ष जिस अभाव की पूर्ति करना चाहता था, वह नहीं हो सकी। वह अभाव तो वैसा ही रहा। आनन्दजी के साधना के व्रतों और भगवान् के बताये हुए अतिचारों में ऐसा एक भी शब्द नहीं है, जो मूर्ति की वन्दना-पूजा आदि का किञ्चित् भी संकेत देता हो। उनकी ऋद्धि-सम्पत्ति का वर्णन है, भगवान् को वन्दना करने जाने, व्रत ग्रहण करने, प्रतिमा आराधन आदि का जो वर्णन है, उनमें कहीं भी उनके मन्दिर जाने, मूर्ति पूजने-करने आदि (जिसे आज धर्म-साधना का प्रमुख अंग माना जाता है) उल्लेख बिलकुल नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि उस समय जिन-प्रतिमा की पूजनादि प्रथा जैन-संघ में थी ही नहीं। न किसी श्रावक के वर्णन में है और न किसी साधु के चरित्र में। धर्म के विधि-विधानों में भी नहीं है, फिर एक-दो शब्द प्रक्षेप करने से क्या होता है?

चरित्र हमारा मार्ग दर्शक है—

भगवान् के आदर्श उपासकों का चरित्र हमारे लिए उत्तम मार्ग-दर्शक है। उनकी धीरता, गंभीरता, धर्मदृढ़ता, अटूट आस्था और देव-दानव के घोर उपसर्ग को शान्तिपूर्वक सहन करने का आत्मसामर्थ्य हमारे मन के लिए अनुकरणीय है।

श्री आनन्दजी की स्पष्टवादिता, कामदेवजी की दृढ़ता, अडिगता और सहनशीलता, कुण्डकोलिकजी की सैद्धांतिकपटुता, सकडालपुत्रजी की कुप्रावचनिक पूर्वगुरु के प्रति अवहेलना — झूठी मन्मन-साहन का अभाव आदि गुण अनुमोदनीय ही नहीं, अनुकरणीय है।

प्रबल शक्तिशाली भयानक दैत्य एवं पिशाच जैसे देव से भयभीत न होकर तीनों परीक्षा में उत्तीर्ण होने का श्रेय तो एकमात्र कामदेवजी को ही मिला है। उनके समक्ष देव भी पराजित हुआ। देव की सीमातीत क्रूरता भी हार गई। किन्तु अन्य श्रमणोपासक डिगे। श्री चुलनीपिताजी ने पुत्रों की हत्या का घोरतम आघात सहन कर लिया, परन्तु माता की हत्या का प्रसंग आने पर वे विचलित हो गए, इसी प्रकार सुरादेवजी अपने तन में भयानक रोगों की उत्पत्ति होना जान कर, चुल्लशतकजी धन-विनाश से, सकडालपुत्रजी धर्मसहायिका, धर्मरक्षिका, सुख-दुःख की साथिन पत्नी की हत्या के भय से विचलित हुए। परन्तु विचलित हो कर भी उन्होंने उस देव की माँग के अनुसार धर्म छोड़ने का तो विचार ही नहीं किया, न प्रार्थना की न गिड़गिड़ाये। उन्होंने साहस के साथ उस पर आक्रमण

कर दिया। वे उसे देव नहीं, क्रूर मानव ही समझ रहे थे।

गृहस्थ प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से युक्त होता है। उदयभाव की न्यूनाधिकता तो मनुष्यों में होती ही है। किसी का पुत्र पर अधिक स्नेह होता है, तो किसी का माता अथवा पत्नी पर। सुरादेवजी ने सोचा होगा कि भयंकर रोगों के उत्पन्न होने से शरीर की जो दुर्दशा होगी और आत्मा में अशांति उत्पन्न हो कर दुर्ध्यान होगा, वह साधना से पतित कर देगा। इस आशंका के मन में उत्पन्न होते ही वे विचलित हो गए, चूलशतकजी पुत्र-हत्या से नहीं, परन्तु धन-विनाश से डिगे। उन्हें धन-विनाश से प्रतिष्ठा का विनाश लगा होगा और दारिद्र्य जन्य दुःखों ने डराया होगा।

श्री आनन्दजी तो घर छोड़ कर अन्य स्थान की पौषधशाला में चले गये थे, कदाचित् कामदेवजी भी अन्यस्थ पौषधशाला में गये हों, शेष चूलनीपिताजी आदि अपने भवन के किसी भाग में नियत की हुई पौषधशाला में ही आराधना करते रहे। यह बात उपसर्ग के समय उनकी चमत्कार माता एवं पत्नी के सुनने और उनके समीप आ कर भ्रम मिटाने और शुद्धिकरण करवाने की घटना से ज्ञात होती है।

दस ही क्यों—

भगवान् महावीर प्रभु के लाखों श्रमणोपासकों में केवल दस ही ऐसे उपासक हों और अन्य इस श्रेणी के नहीं हों, ऐसी बात नहीं है। अंतगडसूत्र के सुदर्शन श्रमणोपासक, भगवती-वर्णित तुंगिका के श्रावक एवं शंख-पुष्कलि आदि कई थे, जिनके प्रत्येक आत्म-प्रदेश में धर्म का रंग अत्यंत गाढ़-गाढ़तम चढ़ा हुआ था। इस धर्म-रंग को छुड़ाने की शक्ति किसी देव-दानव में भी नहीं थी।

यह सूत्र 'दशांग' होने के कारण दस अध्ययन - दस उपासकों के चरित्र—तक ही सीमित है। ये दस ही श्रमणोपासक बीस वर्ष की श्रावकपर्याय, प्रतिमा आराधक, अवधिज्ञान प्राप्त प्रथम स्वर्ग में उत्पाद, चार पल्योपम की स्थिति और बाद के मनुष्यभव में महाविदेह क्षेत्र में मुक्ति पाने वाले हुए। इस प्रकार की साम्यता वाले दस श्रमणोपासकों के चरित्र को ही इस सूत्र में स्थान देना था, अतएव आगमकार ने दस चरित्र ले कर शेष छोड़ दिये।

देवेन्द्र और जिनेन्द्र से प्रशंसित—

ये आदर्श श्रमणोपासक देवेन्द्र और जिनेन्द्र से प्रशंसित थे। कामदेव श्रावकजी की धर्मदृढ़ता आदि की प्रशंसा सौधर्म स्वर्ग के अधिपति, असंख्य देव-देवियों के स्वामी शक्रेन्द्र ने की थी। एक अविश्वासी देव उन्हें चलायमान करने आया। उसने पिशाच, गजराज और नागराज का रूप बना कर कामदेवजी को घोरातिघोर उपसर्ग दिये किन्तु वह उन्हें धर्म से च्युत नहीं कर सका। वह निष्फल हुआ, पराजित

हुआ। उसे कामदेवजी के चरणों में गिर कर क्षमा माँगनी पड़ी। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने श्रमणोपासक कामदेवजी की प्रशंसा की और श्रमण-निर्ग्रन्थों को उनका अनुकरण करने का उपदेश दिया। और कुण्डकोलिक श्रमणोपासक को उसकी सिद्धांत-रक्षिणी विमल बुद्धि पर धन्यवाद दिया। —"**धण्णेसि णं तुमं कुण्डकोलिया!**" (अ. ६) और मद्दुक श्रमणोपासक को कहा—"**सुट्ठु णं मद्दुया! साहुणं मद्दुया।**" (भग. १८-७)।

ऐसे थे वे महामना आदर्श श्रमणोपासक। धर्म में पूर्ण निष्ठा, दृढ़ आस्था और प्राणों की बाजी लगा कर भी स्थिर रहने की दृढ़ता होना परम आवश्यक है। इससे भव-बन्धन कट कर मुक्ति सन्निकट होती है।

प्रतिमाओं का स्वरूप और श्रमणोपासक चरित्र—

प्रतिमाओं का नाम और आगम-वर्णित स्वरूप पर विचार करते लगता है कि अंत की दो-तीन प्रतिमाओं के पूर्व की प्रतिमाएँ ऐसी नहीं कि जिसमें गृह-त्याग कर उपाश्रय में रहते हुए साधना करना आवश्यक ही हो जाय, जैसे— दर्शन प्रतिमा है। इसमें सम्यक्त्व का निरतिचार शुद्धपालन करना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त अन्य साधना जो प्रतिमाधारण करने के पूर्व की जाती थी और जिन व्रतों का पालन होता था, वह पालन होता रहे। इस प्रतिमा के लिए घरबार, कुटुम्ब-परिवार आदि छोड़ना आवश्यक नहीं लगता।

२ दूसरी प्रतिमा में प्रथम प्रतिमा के दर्शनाचार के सिवाय पाँच अणुव्रत और तीन गुणव्रत का पालन करना आवश्यक है।

३ तीसरी में सामायिक और देशावकासिक व्रत का पालन करने की अधिकता है।

४ चौथी में अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अमावस्या को प्रतिपूर्ण पौषध करना विशेष रूप से बढ़ जाता है।

५ पाँचवीं में दिन को ब्रह्मचर्य का पालन करना और रात में परिमाण कर के मर्यादित रहना होता है, स्नान और रात्रिभोजन का भी त्याग होता है।

पाँचवीं प्रतिमा तक ब्रह्मचर्य का सर्वथा त्याग करना और चौथी तक स्नान और रात्रि-भोजन का त्याग आवश्यक नहीं माना गया।

६ छठी ब्रह्मचर्य प्रतिमा है, ७ वीं में सचित्त वस्तु के आहार का त्याग होता है, परन्तु आवश्यक कार्य में आरम्भ करने का त्याग नहीं होता। आठवीं में स्वतः आरंभ करने का, ९ वीं में दूसरों से आरंभ करवाने का त्याग होता है और १० वीं में उसके लिये बनाये हुए भोजन का त्याग होता है।

यहाँ तक अथवा आठवीं प्रतिमा तक की पालना तो गृह-त्याग के बिना ही विवेकपूर्वक

धर्मसाधना करते रहने से ही सकती है। परंतु भगवान् के उपासकों का चरित्र देखते हुए और उनकी साधना पर विचार करते हुए लगता है कि वे विशेष साधक थे। सम्यक्त्व युक्त अणुव्रत गुणव्रत और शिक्षाव्रतों का पालन तो वे चौदह वर्ष तक करते ही रहते थे। पन्द्रहवें वर्ष में उनकी भावना बढ़ी, परंतु सर्वत्यागी निर्ग्रन्थ होने जितना सामर्थ्य अपने में नहीं पाया, फिर भी उन्हें त्याग तो विशेष करना ही था। श्रमणोपासक के लिए प्रतिमा का आराधन करने के सिवाय विशेष साधना उनके सामने नहीं थी। इसलिये उन्होंने घरबार का त्याग करने के बाद ही प्रतिमा का पालन करना चालू किया और तपस्या भी चालू कर दी। दर्शन-प्रतिमा का पालन करते समय भी वे अन्य व्रतों के पालक, ब्रह्मचारी और रात्रि-भोजन के त्यागी रहे थे। गृह त्याग कर उपाश्रय में चले जाने के पश्चात् भी वे चौथी प्रतिमा तक अब्रह्मचारी या रात्रि-भोजी रहे हों, ऐसा मानने में नहीं आता। अतएव यही उचित प्रतीत होता है कि वे विशेष साधक थे—श्रमणभूत आराधक थे।

वैसे श्रमणोपासक आज भी हो सकते हैं—

जब आनन्द-कामदेवजी और अरहन्नक श्रमणोपासक का वर्णन आता है, तो कई लोग यह कह कर बचाव करते हैं कि—'यह तो चौथे आरे की बात है। आज न तो वैसा शरीर-संहनन है और न आत्म-सामर्थ्य। इस युग में उनकी बराबरी नहीं हो सकती। अभी पांचवां आरा है। शरीर ढीलेढाले हैं, शक्ति कम है, परिस्थिति प्रतिकूल है। इसलिये समय के अनुसार चलना चाहिये।"

यह ठीक है कि यह पांचवां आरा है, संहनन-संस्थान वैसे नहीं है और धन-सम्पत्ति भी उतनी नहीं है। परन्तु आत्म-सामर्थ्य से सम्यक् पुरुषार्थ उतना नहीं हो सके, ऐसा मानना उचित नहीं है। आज भी श्रमणोपासक उन जैसी साधना और तपस्या कर सकते हैं और उनसे अधिक भी। कई मासखमण, कोई दो मास, तीन मास तक की तपस्या करने वाले और संथारा कर के देह त्यागने वाले आज भी हैं।

इस पंचमकाल में भी अपनी टेक पर मर-मिटने वाले दृढ़ मनोबली हैं। राजनैतिक उद्देश्य से स्वयं मौत के मुंह में जाने वाले क्रान्तिकारी हुए। धैर्यपूर्वक फांसी पर लटकने वाले हुए और जीतीजागती स्वयं अग्निकुण्ड में कूद कर जल मरने वाली वीरांगनाएं हुई। क्रोध, शोक या हताश हो कर आत्म-घात करने घटनाएँ तो होती ही रहती है—हमारे अपने ही युग में। कई मनोबली बिना क्लोरोफार्म लिये बड़ा आपरेशन करवा लेते हैं। फिर धर्म के लिए ही साहस का अभाव कैसे माना जाय ? क्या इस युग में एक भवावतारी नहीं हो सकते ?

मैं तो सोचता हूँ कि कोई निष्ठापूर्वक अपनी सामर्थ्य के अनुसार सम्यक् साधना करे, तो उन श्रमणोपासकों के समान साधना हो सकना असंभव नहीं है।

इस सूत्र का मननपूर्वक स्वाध्याय करना विशेष लाभकारी होगा। इससे हमें मार्गदर्शन मिलेगा, साथ ही धर्म-आराधना में अप्रमत्त होने की प्रेरणा मिलेगी।

उपासकदशांग का यह प्रकाशन

बहुत दिनों से मेरी भावना प्रज्ञापना सूत्र का प्रकाशन करने की थी, परन्तु कोई अनुवाद करने वाला नहीं मिल रहा था। एक महाशय से अनुवाद करवाया था, परन्तु वह उपयुक्त नहीं लगा। फिर मैंने यह काम प्रारम्भ किया, तो अन्य अधूरे पड़े कार्यों के समान यह कार्य भी रुक गया। मैं प्रथम-पद का एकेन्द्रिय जीवों का अधिकार भी पूर्ण नहीं कर सका। तत्पश्चात् यहाँ पं. मु. श्री उदयचंदजी म. पधारे। मैंने आपसे यह कार्य करने का निवेदन किया। आपने सहर्ष स्वीकार किया और कार्य चालू कर दिया। यदि यह कार्य सतत चालू रहता, तो अब तक कम-से-कम प्रथम भाग तो प्रकाशित हो ही जाता, परन्तु वे विहार और व्याख्यानादि में व्यस्त रहने के कारण प्रथम भाग जितना अंश भी नहीं बना सके।

प्रज्ञापना के पश्चात् मेरा विचार जीवाजीवाभिगम सूत्र के प्रकाशन का भी था। परन्तु अब यह असम्भव लग रहा है। मैं यह भी चाहता था कि अपने साधर्मी-बन्धुओं के उपयोग के लिए उपासक-दशांग का प्रकाशन भी होना चाहिए। परन्तु करे कौन ?

गत कार्तिक शुक्लपक्ष में मैं दर्शनार्थ पाली-जोधपुर आदि गया था। वहाँ सुधर्मप्रचार मंडल के अग्रगण्य महानुभावों—धर्ममूर्ति श्रीमान् सेठ किसनलालजी सा. मालू, धार्मिक-शिक्षा के प्रेमी एवं सक्रिय प्रसारक तत्त्वज्ञ श्रीमान् धींगड़मलजी साहब, संयोजक श्री घीसूलालजी पितलिया आदि से विचार-विनिमय चलते मैंने श्री घीसूलालजी पितलिया से कहा—"आप उपासकदशांग सूत्र का अनुवाद कीजिये। यह सूत्र सरल है। फिर भी मैं देख लूँगा और संघ से प्रकाशित हो जायगा।" श्री पितलियाजी ने स्वीकार कर लिया। फिर साधनों और शैली के विषय में बात हुई। पत्र-व्यवहार भी होता रहा। परिणाम स्वरूप यह सूत्र प्रकाश में आया।

श्री घीसूलालजी नवयुवक हैं, शिक्षित हैं, धर्मप्रिय है, जिज्ञासु हैं और तत्त्वचिंतक हैं। उनका धर्मोत्साह देख कर प्रसन्नता होती है। सीधा-सादा साधनामय जीवन है। 'अंतकृत विवेचन' इनकी प्रथम कृति है। इसे देख कर ही मैंने श्री पितलियाजी से उपासकदशांग सूत्र का अनुवाद करने का कहा था। परिणाम पाठकों के सामने है।

इसके प्रकाशन का व्यय धर्ममूर्ति सुश्रावक श्रीमान् सेठ किसनलालजी पृथ्वीराजजी गणेशमलजी

सा. मालू प्रति १०००, श्रीमान् सेठ पीराजी छगनलालजी सा. झाब प्रति १००० और मुआविका श्रीमती कमलाबाई बोहरा धर्मपत्नी श्रीमान् सेठ [illegible]चन्दजी सा. [illegible] निवासी ने प्रति १००० का दिया है ।

परिशिष्ट में भगवतीसूत्र स्थित तुंगिका नगरी के श्रावकों की भव्यता का वर्णन है । यह भी पाठकों के जानने योग्य समझ कर मैंने लिख कर परिशिष्ठ में जोड़ दिया है और श्री कामदेवजी की सज्झाय भी जो भावोल्लास बढ़ाने वाली है, इसमें स्थान दिया है । आशा है कि पाठक इनसे लाभान्वित होंगे ।

इसमें मुझे आनन्दजी के व्रतों और कर्मादानादि विषय में भी लिखना था, परन्तु उतना अवकाश नहीं होने के कारण छोड़ दिया ।

आशा है कि धर्मप्रिय पाठक इसका मननपूर्वक स्वाध्याय कर भ० महावीर प्रभु के उन आदर्श श्रमणोपासकों की धर्मश्रद्धा, धर्मसाधना और धर्म में अटूट आस्था के गुणों को धारण कर अपनी आत्मा को उन्नत करेंगे । उनकी ऋद्धि-सम्पत्ति की ओर देखने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि जिनधर्म प्राप्ति के पश्चात् उन गृहस्थ साधकों ने पौद्गलिक सम्पत्ति और इन्द्रिय-भोग पर अंकुश लगा दिया था और १४ वर्ष पश्चात् तो सर्वथा त्याग कर के साधनामय जीवन व्यतीत किया था । इसीसे वे एक भवावतारी हुए थे । हमारा ध्येय तो होना चाहिये सर्वत्यागी निर्ग्रन्थ बनने का, परन्तु उतनी शक्ति नहीं हो, तो देशविरत श्रमणोपासक हो कर अधिकाधिक धर्मसाधना अवश्य ही करें ।

सर्वप्रथम यह सावधानी तो रखनी ही चाहिये कि लौकिक प्रचारकों के दूषित प्रचार के प्रभाव से अपने को बचाये रखें । जब भी वैसे विचार मन में उदित हों, तो इस सूत्र में वर्णित आनन्द-कामदेवादि उपासकों के आदर्श का अवलम्बन ले कर लौकिक विचारों को नष्ट कर दें, तभी सुरक्षित रह कर मुक्ति के निकट हो सकेंगे ।

सैलाना
वैशाख शु. १ विक्रम सं. २०३४
वीर संवत् २५०३ दि. २९-४-७७

रतनलाल डोशी

विषयानुक्रमणिका—

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
	प्रथम अध्ययन	
१	आनन्द श्रमणोपासक	१
२	व्रत प्रतिज्ञा	६
३	अतिचार	१४
४	आनन्दजी का अभिग्रह	२५
५	आनन्दजी ने संथारा किया	३५
६	आनन्दजी को अवधिज्ञान	३६
७	गौतम स्वामी का समागम	३७
८	क्या सत्य का भी प्रायश्चित्त होता है ?	४०
	द्वितीय अध्ययन	
९	श्रमणोपासक कामदेव	४५
१०	देव उपसर्ग—पिशाच रूप	४६
११	" हस्ती रूप से घोर उपसर्ग	५१
१२	" सर्प रूप	५३
१३	कामदेव तुम धन्य हो। इन्द्र से प्रशंसित	५५
१४	कामदेव का आदर्श	५८
	तृतीय अध्ययन	
१५	चूलनीपिता श्रमणोपासक	६१
१६	चूलनीपिता देव पर झपटता है	६५
१७	व्रत-भंग हुआ प्रायश्चित्त लो	६६
	चतुर्थ अध्ययन	
१८	श्रमणोपासक सुरादेव	६९

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
	पंचम अध्ययन	
१९	श्रमणोपासक चुल्लशतक	७३
	छठा अध्ययन	
२०	श्रमणोपासक कुण्डकौलिक	७६
२१	नियतिवाद पर देव से चर्चा	७७
२२	देव पराजित हो गया	७९
२३	कुण्डकौलिक तुम धन्य हो	८१
	सप्तम अध्ययन	
२४	श्रमणोपासक सकडालपुत्र	८४
२५	सकडालपुत्र को देव-सन्देश	८५
२६	भगवान् और सकडालपुत्र के प्रश्नोत्तर	८८
२७	सकडालपुत्र समझा और श्रमणोपासक बना	९१
२८	अग्निमित्रा श्रमणोपासिका हुई	९२
२९	सकडालपुत्र को पुनः प्राप्त करने गोशालक आया	९४
३०	सकडालपुत्र ने गोशालक को आदर नहीं दिया	९५
३१	स्वार्थी गोशालक भगवान् की प्रशंसा करता है	"
३२	मैं भगवान् से विवाद नहीं कर सकता	९९
३३	मैं तुम्हें धर्म के उद्देश्य से स्थान नहीं देता	१००
३४	देवोपसर्ग	१०१

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
	अष्टम अध्ययन	
३५	श्रमणोपासक महाशतक	१०४
३६	कामासक्त रेवती की नृशंस योजना	१०६
३७	रेवती ने सपत्नियों की हत्या कर दी	"
३८	मांसादि भोजन और मदिरा का पान	१०७
३९	रेवती पति को मोहित करने गई	१०८
४०	तू दुखी हो कर नरक में जाएगी	११०
४१	भगवान् गौतम स्वामी को भेजते हैं	११२
४२	महाशतक तुम प्रायश्चित्त लो	११३

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
	नवम अध्ययन	
४३	श्रमणोपासक नन्दिनीपिता	११६
	दशम अध्ययन	
४४	श्रमणोपासक सालिहिपिता	११८
४५	उपसंहार	१२०
४६	उपासकदशांग का संक्षेप में परिचय	१२१
	परिशिष्ट	
४७	तुंगिका के श्रमणोपासक	१२४
४८	कामदेवजी की सज्झाय	१२८

॥ णमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स ॥

गणधर महाराज श्रीसुधर्मस्वामी प्रणीत

श्री उपासकदशांग सूत्र

प्रथम अध्ययन

आनन्द श्रमणोपासक

ते णं काले णं ते णं समएणं चंपा णामं णयरी होत्था, वण्णओ, पुण्णभद्दे चेइए, वण्णओ ॥१॥ ते णं काले णं ते णं समएणं अज्जसुहम्मे समोसरिए जाव जंबू पज्जुवासमाणे एवं वयासी—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं छट्ठस्स अंगस्स णायाधम्मकहाणं अयमट्ठे पण्णत्ते, सत्तमस्स णं भंते ! अंगस्स उवासगदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

आणंदे कामदेवे य, गाहावइ चुलणीपिया।
सुरादेवे चुल्लसयए, गाहावइ कुंडकोलिए।
सद्दालपुत्ते महासयए नंदिणीपिया सालिहीपिया ॥ सू. २ ॥

जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं

दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

भावार्थ— उस काल उस समय में जब श्रमण-भगवान् महावीर स्वामी विचर रहे थे, चंपा नामक नगरी थी, पूर्णभद्र नामक उद्यान था। किसी समय आर्य सुधर्म-स्वामी वहाँ पधारे। आर्य जम्बूस्वामी ने वन्दना-नमस्कार कर प्रश्न किया—'हे भगवन्! छठे अंग ज्ञाताधर्मकथांग के भाव मैंने आप से सुने। हे भगवन्! सातवें अंग उपासकदशांग में श्रमण-भगवान् महावीर स्वामी ने क्या भाव फरमाए हैं?' सुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं— 'हे जंबू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने उपासकदशांग के दस अध्ययन फरमाए हैं यथा—१ आनंद २ कामदेव ३ चूलणीपिता ४ सुरादेव ५ चुल्लशतक ६ कुण्डकोलिक ७ सकडालपुत्र ८ महाशतक ९ नंदिनीपिता और १० सालिहीपिता।' जंबूस्वामी ने पूछा— 'हे भगवन्! उपासकदशांग के प्रथम अध्ययन में भगवान् क्या भाव फरमाए हैं?'

एवं खलु जंबू! ते णं काले णं ते णं समएणं वाणियगामे णामं णयरे होत्था, वण्णओ, तस्स णं वाणियगामस्स णयरस्स बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए दूइपलासए णामं चेइए, तत्थ णं वाणियगामे णयरे जियसत्तु राया होत्था, वण्णओ। तत्थ णं वाणियगामे आणंदे णामं गाहावइ परिवसइ अड्ढे जाव अपरिभूए। तस्स णं आणंदस्स गाहावइस्स चत्तारि हिरण्णकोडीओ निहाणपउत्ताओ चत्तारि हिरण्णकोडीओ वुड्ढिपउत्ताओ चत्तारि हिरण्णकोडीओ पवित्थरपउत्ताओ चत्तारि वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं होत्था। से णं आणंदे गाहावइ बहूणं राईसर जाव सत्थवाहाणं बहूसु कज्जेसु य कारणेसु य मंतेसु य कुडुंबेसु य गुज्झेसु य रहस्सेसु य णिच्छएसु य ववहारेसु य आपुच्छणिज्जे, पडिपुच्छणिज्जे, सयस्सवि य णं कुडुंबस्स मेढी पमाणं आहारे आलंबणं चक्खू मेढीभूए जाव सव्वकज्जवड्ढावए यावि होत्था। तस्स णं आणंदस्स गाहावइस्स सिवाणंदा णामं भारिया होत्था, अहीण जाव सुरूवा आणंदस्स गाहावइस्स इट्ठा, आणंदेणं गाहावइणा सद्धिं अणुरत्ता अविरत्ता इट्ठा सद्द जाव पंचविहे माणुस्सए कामभोए पच्चणुभवमाणी विहरइ।

भावार्थ—प्रथम अध्ययन प्रारम्भ करते हुए सुधर्मास्वामी फरमाते हैं—'हे जम्बू! उस समय 'वाणिज्यग्राम' नामक नगर था। द्युतिपलाशक नामक उद्यान था। वहाँ जितशत्रु

राजा राज्य करता था। उस नगर में 'आनन्द' नामक सेठ रहता था, जो बहुत धनवान् यावत् अपराभूत था। आनन्द के पास चार करोड़ का धन भण्डार में था, चार करोड़ व्यापार में और चार करोड़ की घर-बिखरी थी। चालीस हजार गायों का पशुधन था। वह बहुत-से राजा, राजेश्वर, सेठ, सेनापति आदि द्वारा अनेक कार्यों में पूछा जाता था, उससे परामर्श (सलाह) लिया जाता था। अपने कुटुम्ब के लिए भी वह आधारभूत था तथा राजेश्वर आदि दूसरों के लिए भी आधारभूत था एवं सभी कार्य करने वाला था। उसकी पत्नी का नाम 'शिवानन्दा' था जो रूपगुण सम्पन्न थी।

विवेचन— विपुल ऋद्धि समृद्धि वाले को 'गाथापति' कहा जाता है। 'अड्ढे जाव अपरिभूए' में 'जाव' शब्द से इस पाठ का ग्रहण हुआ है--

'अड्ढे दित्ते वित्ते विच्छिण्णविउलभवणसयणासणजाणवाहणे बहुधणजायरूवरयए आओगपओग-संपउत्ते विच्छड्डियपउरभत्तपाणे बहुदासीदासगोमहिसगवेलगप्पभूए बहुजणस्स अपरिभूए।'

(भगवती सूत्र श. २ उ. ५)

अर्थ— 'आनन्द धनधान्यादि से परिपूर्ण, तेजस्वी, विख्यात, विपुल भवन, शयन, आसन, यान वाले, स्वर्ण-रजत आदि प्रचुर धन वाले और अर्थलाभ के लिए धनादि देने वाले थे। सब के द्वारा भोजन किए जाने पर भी प्रचुर आहार-पानी बचता था। गाय-भैंस आदि दुधारु जानवर तथा नौकर-चाकरों की प्रचुरता थी। बहुत-से लोग मिल कर भी उनका पराभव नहीं कर सकते थे।

'चत्तारि हिरण्णकोडीओ'--उस समय की प्रचलित स्वर्णमुद्राओं से है। भण्डार में सुरक्षित निधि के रूप में चार करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ अथवा उतने मूल्य के हीरे-जवाहरात आदि रहा करते थे। चार करोड़ स्वर्ण मुद्राओं के मूल्य का धन व्यापार में लगा हुआ था। चार करोड़ का अवशेष परिग्रह घर-बिखरी के रूप में फैला हुआ था।

तस्स णं वाणियगामस्स बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए एत्थ णं कोल्लाए णामं सण्णिवेसे होत्था, रिद्धत्थिमिय जाव पासाइए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे। तत्थ णं कोल्लाए सण्णिवेसे आणंदस्स गाहावइस्स बहुए मित्तणाइणियगसयण-संबंधिपरिजणे परिवसइ, अड्ढे जाव अपरिभूए।

अर्थ— उस वाणिज्यग्राम नगर के ईशान कोण में 'कोल्लाक' नामक उपनगर

था। वहाँ आनन्द गाथापति के परिवार वाले तथा सगे-सम्बन्धी रहा करते थे, जो धनाढ्य यावत् अपरिभूत थे।

ते णं काले णं ते णं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव समोसरिए परिसा णिग्गया, कोणिए राया जहा तहा जियसत्तु णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जाव पज्जुवासइ। तए णं से आणंदे गाहावइ इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे एवं खलु समणे जाव विहरइ, तं महाफलं जाव गच्छामि णं जाव पज्जुवासामि एवं संपेहेइ संपेहित्ता ण्हाए सुद्धप्पावेसाइं जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं मणुस्स वग्गुरा परिक्खित्ते पायविहारचारेणं वाणियगामं णयरं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ णिग्गच्छित्ता जेणामेव दूइपलासए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ करित्ता वंदइ नमंसइ जाव पज्जुवासइ ॥ ३ ॥

अर्थ— उस काल उस समय में श्रमण-भगवान् महावीर स्वामी वाणिज्यग्राम नगर के द्युतिपलाशक उद्यान में पधारे। कोणिक की भाँति जितशत्रु राजा भी पर्युपासना करने लगा। परिषद आई। आनन्द गाथापति को भगवान् के पधारने का समाचार मिला तो अपने मित्र-वृंद के साथ भगवान् की सेवा में उपस्थित हुआ तथा वन्दना-नमस्कार कर पर्युपासना करने लगा।

विवेचन—'तं महाफलं जाव गच्छामि' में निम्न सूत्रांश का ग्रहण हुआ है—'तं महाफलं खलु भो देवाणुप्पिया ! तहारूवाणं अरिहंताणं भगवंताणं णामगोयस्सवि सवणयाए किमंग पुण अभिगमण-वंदण-णमंसण-पडिपुच्छण पज्जुवासणयाए ? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ?'

अर्थ—अहो देवानुप्रिय ! तथारूप के अरिहंत भगवंतों के (महावीर आदि) नाम और (काश्यप आदि) गोत्र सुनने का भी महान् फल है, फिर उनकी सेवा में जाने, वंदना-नमस्कार करने, सुख-साता पूछने एवं पर्युपासना करने के फल का तो कहना ही क्या ? उनसे एक धार्मिक वचन सुनने का भी महान्-महान् लाभ है, फिर प्रवचन सुन कर विपुल अर्थ प्राप्त करने का तो कहना ही क्या ?

आनन्द गाथापति ने स्नान किया और सभा में जाने योग्य वस्त्राभूषण धारण किए। यह लौकिक-व्यवहार है। स्नान का धर्म के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

'सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं' का अर्थ—'कोरंट वृक्ष के फूलों की माला को छत्र पर धारण किया' समझना चाहिए। कई जगह 'कोरंट वृक्ष के फूलों का छत्र धारण किया'—अर्थ भी देखा जाता है, पर शब्दों का अर्थ इस प्रकार है—कोरंट वृक्ष की मालाओं के समूह सहित छत्र धारण किया। 'स' शब्द यहाँ सहित का द्योतक है।

'आयाहिणं पयाहिणं'—का अर्थ कोई 'भगवान् के चारों ओर प्रदक्षिणा' करते हैं, पर स्थानकवासी आम्नाय 'हाथ जोड़ कर अपने अंजलिपुट से सिरसा आवर्तन' इस अर्थ को ठीक मानती है। वैसे भी भगवान् की परिक्रमा का कोई कारण ध्यान में नहीं आता है।

'मज्झं मज्झेणं' का अर्थ अनेक स्थानों पर 'बीचोंबीच,' 'मध्यभाग से' देखा जाता है, पर वह उचित नहीं है। 'मज्झं मज्झेणं' का बहुश्रुत-सम्मत अर्थ तो है—'राजमार्ग से गमन'। गली-कूँचों से आना मज्झं मज्झेणं नहीं है।'

तए णं समणे भगवं महावीरे आणंदस्स गाहावइस्स तीसे य महइ महालियाए जाव धम्मकहा, परिसा पडिगया, राया य गए ॥ सू. ३ ॥

अर्थ—भगवान् महावीर स्वामी ने आनंद गाथापति तथा विशाल परिषद् को धर्मकथा कही। परिषद् और राजा धर्म सुन कर चले गए।

विवेचन—धर्मदेशना का विस्तृत वर्णन उववाई सूत्र में है। धर्म सुनने का सब से बड़ा लाभ सर्वविरति अंगीकार करना है। संसार से विमुख कर मोक्षाभिमुख करने वाले व्याख्यान ही 'धर्मकथा' है। श्रावक-व्रत वही स्वीकार करता है जो संयम धारण न कर सके। जिसकी जिनवाणी पर श्रद्धा प्रतीति एवं रुचि नहीं है, वह न तो संयमी-जीवन के योग्य है, न श्रावक-व्रतों के।

तए णं से आणंदे गाहावइ समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्टतुट्ठ जाव एवं वयासी—"सद्दहामि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं, पत्तियामि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं, रोएमि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं एवमेयं भंते ! तहमेयं भंते, अवितहमेयं भंते ! इच्छियमेयं भंते ! पडिच्छियमेयं भंते ! इच्छियपडिच्छियमेयं भंते ! से जहेयं तुब्भे वयह त्ति कट्टु। अहा णं देवाणु-

प्पियाणं अंतिए बहवे राईसरतलवरमाडंबियकोडुंबियसेट्ठिसेणावइसत्थवाहप्प-भिइओ मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया णो खलु अहं तहा संचाएमि मुण्डे जाव पव्वइत्तए। अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्त-सिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जिस्सामि। अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह ॥ ४ ॥

अर्थ—आनन्द धर्मोपदेश सुन कर हृष्ट-तुष्ट हुए। उनका चित्त आनन्दित हुआ। वे वंदना-नमस्कार कर कहने लगे—'हे भगवन्! मैं निर्ग्रंथ-प्रवचन पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि करता हूँ। आपने जो भाव फरमाए, वे वास्तव में ऐसे ही हैं, उनमें अन्यथा कुछ भी नहीं है। अतः यह निर्ग्रंथ-प्रवचन मुझे रुचा है, आपका कथन यथार्थ है। आपके समीप बहुत-से राजा, सेठ, सेनापति आदि संयम धारण करते हैं, परन्तु मेरी सामर्थ्य नहीं कि गृहस्थावस्था छोड़ कर मुनि बन सकूं। मैं तो आपकी साक्षी से पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप श्रावक के बारह व्रत धारण करूँगा। भगवान् ने फरमाया—"हे देवानुप्रिय! जैसे तुम्हें सुख हो वैसा करो, परन्तु धर्म-कार्य में प्रमाद मत करो।"

तए णं से आणंदे गाहावइ समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए तप्पढमयाए थूलगं पाणाइवायं पच्चक्खाइ जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा।

अर्थ—आनन्दजी श्रावक के प्रथम व्रत में स्थूल प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करते हैं—"मैं यावज्जीवन मन, वचन, काया से स्थूल प्राणातिपात का सेवन नहीं करूँगा और न करवाऊँगा।

विवेचन— संसारी जीवों के मुख्य दो भेद हैं—त्रस और स्थावर। स्थूल प्राणातिपात विरमण में श्रावक निरपराधी त्रस जीवों को जान-बूझ कर संकल्पपूर्वक हिंसा का त्याग करता है।

तयाणंतरं च णं थूलगं मुसावायं पच्चक्खाइ जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा।

अर्थ—श्रावक के दूसरे व्रत में आनन्दजी स्थूल मृषावाद का प्रत्याख्यान करते हैं—'मैं दो करण और तीनों योग से स्थूल मृषावाद का सेवन नहीं करूँगा और न कराऊँगा,

मन वचन और काया से।'

विवेचन— आवश्यक सूत्र में—कन्यालीक (वर-कन्या आदि के सम्बन्ध में मिथ्या-भाषण) गवालीक (गाय आदि पशुओं के सम्बन्ध में मिथ्या-भाषण), भूमालिक (भूमि के सम्बन्ध में असत्य भाषण), न्यासापहार (धरोहर दबाने के लिए झूठ बोलना) एवं कूटसाक्ष्य (झूठी गवाही) ये पाँच मुख्य मृषावाद बताए गए हैं। श्रावक इस व्रत में इन बड़े झूठों का प्रत्याख्यान करता है।

तयाणंतरं च णं थूलगं अदिण्णादाणं पच्चक्खाइ जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा।

अर्थ—तत्पश्चात् आनन्दजी श्रावक के तीसरे व्रत में स्थूल अदत्तादान का प्रत्याख्यान करते हैं—'मैं जीवनपर्यंत दो करण और तीन योग से स्थूल अदत्तादान का सेवन नहीं करूँगा न करवाऊँगा, मन वचन और काया से।'

विवेचन—'सेंध लगा कर, गाँठ खोल कर, बन्द ताले को कुंची द्वारा खोल कर (अथवा तोड़-कर) और 'यह वस्तु अमुक की है' ऐसा जान कर भी लेना'। इन सब को आवश्यक सूत्र में 'बड़ी चोरी' माना गया है।

तयाणंतरं च णं सदारसंतोसिए परिमाणं करेइ, णण्णत्थ एक्काए सिवाणंदाए भारियाए अवसेसं सव्वं मेहुणविहिं पच्चक्खामि मणसा वयसा कायसा।

अर्थ— चौथे व्रत में आनन्दजी 'स्वदार-संतोष परिमाण' करते हैं—"मैं अपनी भार्या सिवानन्दा के अतिरिक्त शेष सभी के साथ मैथुन-विधि का मन वचन और काया से प्रत्याख्यान करता हूँ।"

तयाणंतरं च णं इच्छाविहिपरिमाणं करेमाणे हिरण्ण-सुवण्णविहिपरिमाणं करेइ, णण्णत्थ चउहिं हिरण्णकोडीहिं निहाणपउत्ताहिं चउहिं वुड्ढिपउत्ताहिं चउहिं पवित्थरपउत्ताहिं अवसेसं सव्वं हिरण्ण-सुवण्णविहिं पच्चक्खामि ३। तयाणंतरं च णं चउप्पयविहिपरिमाणं करेइ, णण्णत्थ चउहिं वएहिं दसगोसाहस्सिएणं वएणं अवसेसं सव्वं चउप्पयविहिं पच्चक्खामि ३।

अर्थ— पाँचवें परिग्रह-परिमाण व्रत में आनन्दजी हिरण्य-स्वर्ण-विधि का परिमाण

करते हैं—'चार करोड़ स्वर्णमुद्राएँ भण्डार में, चार करोड़ व्यापार में, चार करोड़ की घर-बिखरी। इसके अतिरिक्त शेष हिरण्य-स्वर्ण-विधि का प्रत्याख्यान करता हूं।' इसके बाद चतुष्पद-विधि का परिमाण करते हैं—'दस हजार गायों का एक व्रज, ऐसे चार व्रज के अतिरिक्त शेष पशु-धन का प्रत्याख्यान करता हूँ।

तयाणंतरं च णं खेत्तवत्थुविहिपरिमाणं करेइ, णण्णत्थ पंचहिं हलसएहिं नियत्तणसइएणं हलेणं, अवसेसं सव्वखेत्तवत्थुविहिं पच्चक्खामि ३।

तयाणंतरं च णं सगडविहिपरिमाणं करेइ, णण्णत्थ पंचहिं सगडसएहिं दिसायत्तिएहिं, पंचहिं सगडसएहिं संवाहणिएहिं अवसेसं सव्वं सगडविहिं पच्चक्खामि ३।

तयाणंतरं च णं वाहणविहिपरिमाणं करेइ, णण्णत्थ चउहिं वाहणेहिं दिसायत्तिएहिं चउहिं वाहणेहिं संवाहणिएहिं, अवसेसं सव्वं वाहणविहिं पच्चक्खामि ३।

अर्थ—तदनन्तर आनन्दजी क्षेत्र-वास्तु विधि का परिमाण करते हैं—'सौ निवर्तन ‡ का एक हल, ऐसे पाँच सौ हल उपरान्त अवशेष सभी क्षेत्र-वस्तु विधि का प्रत्याख्यान करता हूं।' तदनन्तर शकट-विधि का परिमाण करते हैं—'पाँच सौ छकड़े (गाड़े) यात्रार्थ गमना,

---

‡ श्री वाडीलाल मोतीलाल शाह अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित उपासकदशा के अर्थ की प्रति हमारे पास है। सं. १९८५ छपे के आधार से 'नियत्तण'—निवर्तन का परिमाण। शास्त्रोद्धारक पूज्य श्री अमोलकऋषिजी म. ने अपने उपासकदशा पृ. १० पर पादटिप्पणी में एक संस्कृत श्लोक व उसका अर्थ इस प्रकार दिया है —

"दशकरैं भवेत् वंश, वंशविंशं निवर्तन।
निवर्तन शतैर्मान, हलं प्रोक्तं मनीबुद्धे" ॥१॥

अर्थात्—दस हाथ का एक बांस, बीस बांस का एक निवर्तन, सौ निवर्तन का एक हल, ऐसा लीलावती ग्रंथ में है।

अब हम पांच सौ हल का नाप निकाल सकते हैं—

दस हाथ=एक बांस। बीस बांस=दो सौ हाथ=एक निवर्तन। सौ निवर्तन=२००० बांस=२०००० हाथ=एक हल।

चार हाथ=एक धनुष, दो हजार धनुष=एक कोस, यानि ८००० हाथ का एक कोस, तो बीस हजार हाथ की लम्बाई ढाई कोस हुई। एक हल में ढाई कोस तो पांच सौ हल में साढ़े बारह सौ कोस जमीन हुई।

उपरोक्त श्लोक का शुद्ध रूप यह है—दशकरैर्भवेद् वंशः, विंशद्वंशो निवर्तनम्। निवर्तन शतैर्मानम्, हलमेकं स्मृतं बुधैः॥

['निवर्तन' शब्द का अर्थ 'संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ' पृ० ६०१ में इस प्रकार दिया है—" सौ वर्गगज भूमि अथवा २० बांस लम्बी जगह "— डोशी]

गमन के लिए तथा पाँच सौ छकड़े तृण-काष्ठ-धान्यादि ढोने के लिए। अवशेष सब शकट-विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।' तदनन्तर जलयान (जहाज) विधि का परिमाण करते हैं—'मैं चार जहाज यात्रा के लिए तथा चार जहाज माल ढोने के लिए रख कर अवशेष यानविधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।'

तयाणंतरं च णं उवभोगपरिभोगविहिं पच्चक्खायमाणे उल्लणियाविहि-परिमाणं करेइ, णण्णत्थ एगाए गंधकासाईए, अवसेसं सव्वं उल्लणियाविहिं पच्चक्खामि ३।

अर्थ—सातवें व्रत में सर्वप्रथम आर्द्रनयनिका विधि का परिमाण करते हैं—सुगंधित काषायिक वस्त्र के सिवाय अवशेष आर्द्रनयनिकाविधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

विवेचन—जल से भीगे शरीर को पोंछने के काम में आने वाले अंगोछे आदि की मर्यादा 'उल्लणियाविहि परिमाण' कहा जाता है।

तयाणंतरं च णं दंतवणविहिपरिमाणं करेइ, णण्णत्थ एगेणं अल्ललट्ठी-महुएणं अवसेसं दंतवणविहिं पच्चक्खामि ३।

अर्थ—दातुन विधि का परिमाण करते हैं—मैं आर्द्रलष्ठिमधुक के सिवाय शेष दातुन विधि का प्रत्याख्या करता हूँ।

विवेचन—आर्द्र—गीली, लष्टि—लकड़ी, मधुक—मुलेठी या जेठी। हरी मुलेठी की लकड़ी के सिवाय शेष वस्तुओं से दातुन करने का आनंदजी ने त्याग किया।

तयाणंतरं च णं फलविहिपरिमाणं करेइ, णण्णत्थ एगेणं खीरामलएणं, अवसेसं फलविहिं पच्चक्खामि ३।

अर्थ—फलविधि का परिमाण करते हैं—क्षीर-आमलक के अतिरिक्त शेष फल विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

विवेचन—दूध के समान मीठे आँवलों को 'क्षीरामलक' कहा जाता है।

तयाणंतरं च णं अब्भंगणविहिपरिमाणं करेइ, णण्णत्थ सयपागसहस्सपागेहिं

तेल्लेहिं अवसेसं सव्वं अब्भंगणविहिं पच्चक्खामि ३। तयाणंतरं च णं उवट्टण-विहिपरिमाणं करेइ, णण्णत्थ एगेणं सुरहिणा गंधट्टएणं, अवसेसं उवट्टणविहिं पच्च-क्खामि ३।

अर्थ—तदनन्तर आभ्यंगन विधि का परिमाण करते हैं—'मैं शतपाक-सहस्रपाक तेल के सिवाय अवशेष अभ्यंगन विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

तदनन्तर उद्वर्तन विधि का परिमाण करते हैं—मैं गंधाष्टक चूर्ण के सिवाय अवशेष उद्वर्तन विधि का त्याग करता हूँ।

विवेचन—अभ्यंगन का अर्थ है 'मालिश,' शतपाक के तीन अर्थ उपलब्ध होते हैं—१ सौ बार जो अन्य औषधियों सहित पकाया गया हो २ सौ वस्तुएँ जिनमें मिली हों ३ जिसके निर्माण में सौ स्वर्ण-मुद्राएँ व्यय की गई हों। शरीर के मल को दूर कर निर्मल बनाने वाले द्रव्य पीठी आदि जिनमें तेलादि स्निग्ध पदार्थों का मिश्रण होता है, उसे 'उद्वर्तनविधि' कहते हैं। आठ सुगंधित वस्तुओं को मिला कर बनाई गई वस्तु 'सुगन्धित गन्धाष्टक' कही जाती है।

तयाणंतरं च णं मज्जणविहिपरिमाणं करेइ, णण्णत्थ अट्ठहिं उट्टिएहिं उदगस्स घडएहिं अवसेसं मज्जणविहिं पच्चक्खामि ३।

अर्थ—इसके बाद स्नानविधि का परिमाण करते हैं—'मैं प्रमाणोपेत आठ घड़ों से अधिक जल का स्नान में प्रयोग नहीं करूँगा।

विवेचन— उट्टिएहिं उदगस्स घडएहिं—ऊँट के चमड़े से बनी कुपी जिसमें घी-तेल भरा जाता था, वैसे आकार का मिट्टी का घड़ा तथा जिसका माप उचित आकार के घड़े में समाए जितने जल-प्रमाण होता था, ऐसे आठ घड़े प्रमाण जल से अधिक का आनन्दजी ने त्याग कर दिया था। सामान्य स्नान में तो वे इससे भी कम जल का प्रयोग करते थे।

तयाणंतरं च णं वत्थविहिपरिमाणं करेइ, णण्णत्थ एगेणं खोमजुयलेणं अवसेसं वत्थविहिं पच्चक्खामि ३।

अर्थ—आनन्दजी वस्त्रविधि का परिमाण करते हैं—'सूती कपड़े का जोड़ा—क्षोमयुगल' रख कर शेष वस्त्रविधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

तयाणंतरं च णं विलेवणविहिपरिमाणं करेइ, णण्णत्थ अगरुकुंकुमचंदण-माइएहिं अवसेसं विलेवणविहिं पच्चक्खामि ३।

अर्थ—आनन्दजी विलेपनविधि का परिमाण करते हैं—अगर, कुंकुम और चन्दन आदि के अतिरिक्त शेष विलेपन विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

तयाणंतरं च णं पुप्फविहिपरिमाणं करेइ, णण्णत्थ एगेणं सुद्धपउमेणं मालइकुसुमदामेणं वा, अवसेसं पुप्फविहिं पच्चक्खामि ३।

अर्थ—तदनन्तर वे पुष्पविधि का परिमाण करते हैं—कमल व मालती के फूलों के सिवाय शेष फूलों का त्याग करता हूँ।

तयाणंतरं च णं आभरणविहिपरिमाणं करेइ, णण्णत्थ मट्ठकण्णेज्जएहिं णाममुद्दाए य, अवसेसं आभरणविहिं पच्चक्खामि ३।

अर्थ—आभरणविधि का परिमाण करते हैं—मैं कानों के कुण्डल एवं नामांकित मुद्रिका (अंगूठी) के अतिरिक्त शेष आभूषण पहनने का त्याग करता हूँ।

तयाणंतरं च णं धूवणविहिपरिमाणं करेइ, णण्णत्थ अगरुतुरुक्कधूवमाइ-एहिं, अवसेसं धूवणविहिं पच्चक्खामि ३।

अर्थ—वे धूपन विधि का परिमाण करते हैं—अगर, तुरुक (संभवतः लोबान) आदि के सिवाय शेष धूपन विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

तयाणंतरं च णं भोयणविहिपरिमाणं करेमाणे—

(अ) पेज्जविहिपरिमाणं करेइ, णण्णत्थ एगाए कट्ठपेज्जाए अवसेसं पेज्ज-विहिं पच्चक्खामि ३।

(आ) तयाणंतरं च णं भक्खणविहिपरिमाणं करेइ, णण्णत्थ एगेहिं घय-पुण्णेहिं खंडखज्जएहिं वा, अवसेसं भक्खणविहिं पच्चक्खामि ३।

(इ) तयाणंतरं च णं ओदणविहिपरिमाणं करेइ, णण्णत्थ कलमसालिओद-णेणं, अवसेसं ओदणविहिं पच्चक्खामि ३।

(ई) तयाणंतरं च णं सूवविहिपरिमाणं करेइ, णण्णत्थ कलायसूवेण वा मुग्गमाससूवेण वा, अवसेसं सूवविहिं पच्चक्खामि ३।

(उ) तयाणंतरं च णं घयविहिपरिमाणं करेइ, णण्णत्थ सारइएणं गोघय-मंडेणं, अवसेसं घयविहिं पच्चक्खामि ३।

(ऊ) तयाणंतरं च णं सागविहिपरिमाणं करेइ, णण्णत्थ वत्थुसाएण वा, सुत्थियसाएण वा मंडुक्कियसाएण वा, अवसेसं सागविहिं पच्चक्खामि ३।

(ए) तयाणंतरं च णं माहुरयविहिपरिमाणं करेइ, णण्णत्थ एगेणं पालंगा-माहुरएणं अवसेसं माहुरयविहिं पच्चक्खामि ३।

(ऐ) तयाणंतरं च णं जेमणविहिपरिमाणं करेइ, णण्णत्थ सेहंबदालियं-बेहिं, अवसेसं जेमणविहिं पच्चक्खामि ३।

(ओ) तयाणंतरं च णं पाणियविहिपरिमाणं करेइ, णण्णत्थ एगेणं अंत-लिक्खोदएणं, अवसेसं पाणियविहिं पच्चक्खामि ३।

(औ) तयाणंतरं च णं मुहवासविहिपरिमाणं करेइ, णण्णत्थ पंचसोगंधि-एणं तंबोलेणं, अवसेसं मुहवासविहिं पच्चक्खामि ३।

अर्थ—इसके बाद आनन्दजी भोजनविधि का परिमाण करते हुए—

(अ) पेयविधि का परिमाण करते हैं—मैं उबाले हुए मूंग का जूस (पानी) और घी में तले चावलों के पेय के अतिरिक्त शेष पेयविधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

(आ) भक्षणविधि का परिमाण करते हैं—मैं घेवर व मीठे खाजों के अतिरिक्त शेष (मिष्ठान्न) भक्षणविधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

(इ) ओदनविधि का परिमाण करते हैं—मैं कलमशालि (चावल विशेष) के अतिरिक्त शेष ओदनविधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

(ई) सूपविधि का परिमाण करते हैं—मैं चने, मूंग और उड़द की दाल के सिवाय शेष सूपविधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

(उ) घृतविधि का परिमाण करते हैं—'शारदीय गो-घृतसार' के अतिरिक्त शेष घृतविधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

(ऊ) साग-विधि का परिमाण करते हैं—बथुआ, सौवस्तिक (चंवलाई) और मंडुकी (सागविशेष) के अतिरिक्त शेष सागविधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

(ए) माधुरकविधि का परिमाण करते हैं—मैं 'पालंका' के अतिरिक्त शेष माधुरकविधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

(ऐ) जीमणविधि का परिमाण करते हैं—घोलबड़े व दाल के बड़ों के अतिरिक्त शेष जीमणविधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

(ओ) पानी का परिमाण करते हैं—'आकाश से गिरे पानी' के अतिरिक्त शेष पानी का त्याग करता हूँ।

(औ) मुखवासविधि का परिमाण करते हैं—मैं (इलायची, लौंग, कपूर, कंकोल और जायफल) पाँचों सौगंधिक तंबोल के अतिरिक्त शेष मुखवास विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

विवेचन—भोजनविधि के परिमाण में दस बोलों की मर्यादा करते हैं। 'सारदए' के दो अर्थ मिलते हैं— १ शरद ऋतु में निष्पन्न २ प्रातः उषाकाल में बनाया हुआ। गोधयमंडणं का अर्थ है स्वस्थ उत्तम नस्ल की गायों के दही से शुद्धतापूर्वक बनाया हुआ घी। 'पालंका' के लिए इतनी ही जानकारी मिलती है कि यह महाराष्ट्र देश का प्रसिद्ध मीठा फल है।' आकाश से बरसे पानी को सम्भवतः बड़े-बड़े टांकों में झेल लिया जाता था। जमीन पर नहीं पड़ने के कारण उसे 'अंतरिक्षोदक' कहा गया है।

तयाणंतरं च णं चउव्विहं अणट्ठादंडं पच्चक्खाइ—तं जहा—अवज्झाणायरियं, पमायायरियं हिंसप्पयाणं पावकम्मोवएसे ३ सू. ॥ ५ ॥

अर्थ—तदन्तर आठवें व्रत में चार प्रकार के अनर्थदण्ड का प्रत्याख्यान करते हैं—

१ अपध्यानाचारण—आर्त्त-रौद्र आदि बुरे ध्यान का आचरण नहीं करूंगा।

२ प्रमादाचरण—प्रमाद का सेवन नहीं करूंगा।

३ हिंस्रप्रदान—हिंसा में प्रयुक्त होने वाले उपकरण प्रदान नहीं करूंगा।

४ पापकर्मोपदेश—पाप-कर्म का उपदेश नहीं दूंगा।

विवेचन – शिक्षाव्रतों के लिए श्रावक का यह मनोरथ रहता है कि 'ऐसी मेरी श्रद्धा प्ररूपणा तो है, फरसना करूं तब शुद्ध होऊं।' सामायिक कभी कम बने, ज्यादा बने, नहीं बने, चौदह नियम आदि कभी चितारे, कभी याद नहीं रहे, दया-पौषध का अवसर कभी हो, कभी न हो तथा अतिथि-संविभाग व्रत की स्पर्शना भी साधु-साध्वी का योग मिलने पर संभव है। अतः संभवतः आनन्दजी के चारों शिक्षा-व्रतों का उल्लेख यहाँ नहीं हो पाया हो। वैसे तो उन्होंने अमुक प्रकार से शिक्षा-व्रत भी ग्रहण किए ही होंगे, तभी उन्हें 'बारह व्रतधारी' कहा गया है।

आनन्दजी की व्रत-प्रतिज्ञाओं के बाद भगवान् उन्हें व्रतों के अतिचार बतलाते हैं।

अतिचार

इह खलु आणंदाइ! समणे भगवं महावीरे आणंदं समणोवासगं एवं वयासी—एवं खलु आणंदा! समणोवासएणं अभिगयजीवाजीवेणं जाव अणइक्कमणिज्जेणं सम्मत्तस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा ण समायरियव्वा, तं जहा—संका, कंखा, विइगिच्छा, परपासंडपसंसा, परपासंडसंथवे।

अर्थ—आनन्द श्रमणोपासक को सम्बोधित करते हुए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने फरमाया—"हे आनन्द! जीव-अजीव आदि नव तत्त्व के ज्ञाता एवं देव-दानवादि से भी समकित-च्युत नहीं किए जा सकने योग्य श्रमणोपासक को सम्यक्त्व के प्रधान पाँच अतिचार जानने योग्य तो है, परंतु आचरण करने योग्य नहीं हैं। यथा—१ शंका २ कांक्षा ३ विचिकित्सा ४ परपाखंड प्रशंसा ५ परपाखंड संस्तव।

विवेचन—अतिचार—अभिधान राजेन्द्र भाग १ पृ. ८ पर अतिचार शब्द के कुछ अर्थ इस प्रकार दिये हैं—ग्रहण किए हुए व्रत का अतिक्रमण, उल्लंघन, चारित्र में स्खलना, व्रत में देश-भंग के हेतु आत्मा के अशुभ परिणाम विशेष।

१ शंका—जिनेन्द्र-प्ररूपित निर्ग्रंथ-प्रवचन के विषय में संशय-वृत्ति रखना—'यह ऐसा है या वैसा है' आदि।

२ कंखा—कांक्षा—मिथ्यात्वमोहनीय के उदय से अन्य दर्शनों को ग्रहण करने की इच्छा—'कंखा अन्नान्नदंसणग्गहो'।

३ विइगिच्छा—विचिकित्सा—धर्मकृत्यों के फल में संदेह करना। साधु के मलीन वस्त्रादि उपधि देख कर घृणा करना।

४ परपासंडपसंसा—यहाँ पासंड शब्द का अर्थ 'व्रत' से है। सर्वज्ञ प्रणीत अर्हत् दर्शन से बाहर रहे परदर्शनियों की स्तुति, गुण-कीर्तन आदि करना।

५ परपासंडसंथव—परपाखंडियों के साथ आलाप-संलाप, शयन, आसन, भोजन आदि परिचय करना परपासंडसंस्तव कहलाता है।

तयाणंतरं च णं थूलगस्स पाणाइवायवेरमणस्स समणोवासएणं पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा ण समायरियव्वा, तं जहा—बंधे, वहे, छविच्छेए, अइभारे, भत्तपाणवोच्छेए॥

अर्थ—तदनन्तर (प्रथम अणुव्रत) स्थूल प्राणातिपातविरमण के पाँच प्रधान अतिचार श्रावक को जानने योग्य हैं, किंतु समाचरण योग्य नहीं। वे ये हैं—१ बंध २ वध ३ छविच्छेद ४ अतिभार और ५ भक्त-पान विच्छेद।

विवेचन—१ बंधे—मनुष्य, पशु आदि को साँस लेने में, रक्त-संचालन में, अवयव संकोच-विस्तार में, या आहार-पानी करने में बाधा पड़े, इस प्रकार के गाढ़े रस्सी आदि के बंधन से बांधना। तोता-मैना को पिंजरे में बंद करना, बंदी बनाना आदि इस अतिचार के अन्तर्गत हैं।

२ वहे—वध—अंग भंग करना, मर्मान्तिक प्रहार करना, हड्डी आदि तोड़ देना, ऐसी चोट जो तत्काल या कालान्तर में मृत्यु अथवा भयंकर दुःख का कारण बने।

३ छविच्छेद—शरीर की चमड़ी, नाक, कान, हाथ, पाँव आदि काटना, नासिका छेदन कर 'नाथ डालना,' सींग-पूंछ आदि काटना, कान चीरना, बधिया करना आदि।

४ अतिभारारोपण—पशु, तांगा, छकड़ा, गाड़ी, हमाल, ठेला, हाथ-रिक्शा, आदि पर उनकी सामर्थ्य से अधिक भार वहन करवाना 'अतिभार' है।

५ भोजन-पानी विच्छेद—पशु, अथवा मनुष्य आदि को अपराध वश अथवा अन्य कारणों से भोजन पानी समय पर न देना अथवा बिल्कुल बंद कर देना भोजन करते हुए को काम में लगा कर अंतराय देना आदि 'भक्तपानविच्छेद' है।

तयाणंतरं च णं थूलगस्स मुसावायवेरमणस्स पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा, तं जहा—सहसाअब्भक्खाणे रहसाअब्भक्खाणे सदारमंतभेए मोसोवएसे कूडलेहकरणे।

अर्थ—तदन्तर श्रावक के दूसरे व्रत 'स्थूल-मृषावाद-विरमण' के पाँच अतिचार श्रावक को जानने योग्य हैं परंतु आचरण करने योग्य नहीं हैं। यथा—१ सहसाभ्याख्यान, २ रहस्याभ्याख्यान, ३ स्वदार-मंत्र-भेद, ४ मृषोपदेश और ५ कूट-लेख करण।

विवेचन—१ सहसाभ्याख्यान—बिना विचारे किसी पर झूठा कलंक लगाना, २ रहसाभ्याख्यान—एकान्त में बातचीत करने वाले को दोष देना, अथवा किसी की गुप्त बात प्रकट करना। ३ स्वदारमंत्रभेद—अपनी स्त्री की (अथवा किसी विश्वस्त जन द्वारा कही गई) गुप्त बात प्रकट करना, ४ मृषोपदेश—प्रहार, रोगनिवारण आदि में सहायक मंत्र, औषधि, विष आदि के प्रयोग का उपदेश जीव-विराधना का कारण होने से इस प्रकार के वचन-प्रयोग को 'मृषोपदेश' कहते हैं। यदि कोई यह सोचे कि 'मैं झूठ तो बोला ही नहीं' किन्तु वह हिंसाकारी सलाह है। इसके परिहार के लिए मिथ्योपदेश को ज्ञानियों ने झूठ माना है। यह साक्षात् (परलोक पुनर्जन्म आदि विषयों में) मिथ्या उपदेश का विषय नहीं है, यदि वैसा होता तो अनाचार समझा जाता। ५ कूटलेख करण—'मेरे तो झूठ बोलने का त्याग है, लिखने का नहीं, ऐसा समझ कर कोई (असद्भूत—झूठा) लेखन करे, जाली हस्ताक्षर करना, जाली दस्तावेज तैयार करना आदि तब तक अतिचार है, जब तक प्रमाद या अविवेक हो, विचारपूर्वक जानते हुए लिखना तो अनाचार है।

तयाणंतरं च णं थूलगस्स अदिण्णादाणवेरमणस्स पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा, तं जहा—तेणाहडे, तक्करप्पओगे विरुद्धरज्जाइक्कमे कूडतुल-कूडमाणे तप्पडिरूवगववहारे॥

अर्थ—तदन्तर श्रावक के तीसरे व्रत स्थूल अदत्तादान विरमण के पाँच अतिचार जानने योग्य हैं, आचरने योग्य नहीं हैं—स्तेनाहृत, तस्करप्रयोग, विरुद्धराज्यातिक्रम, कूटतुलाकूटमान, तत्प्रतिरूपक व्यवहार।

विवेचन—१ स्तेनाहृत—चोर द्वारा अपहृत वस्तु लेना। २ तस्करप्रयोग—चोरी करने का परामर्श देना ३ विरुद्धराज्यातिक्रम—राज्याज्ञा के विरुद्ध सीमा उल्लंघन, निषिद्ध वस्तुओं का व्यापार, चुंगी आदि कर का उल्लंघन। ४ कूटतुलाकूटमान—खोटे तोल-माप रखना, कम देना, ज्यादा लेना आदि। ५ तत्प्रतिरूपक व्यवहार—अच्छी वस्तु के समान दिखने वाली बुरी वस्तु देना, सौदे या नमूने में

वनाए अनुसार माल नहीं देना, मिलावट करना आदि। ये पाँचों कृत्य लोभवश किए जाने पर 'अनाचार' की परिधि में चले जाते हैं। बिना लोभ के किसी की आज्ञा के अधीन होकर, उदासीन भाव से या वैसे अन्य कारणों से ही अतिचार रहते हैं (मोक्षमार्ग पृ. १७१)।

तयाणंतरं च णं सदारसंतोसिए पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा, तं जहा—इत्तरियपरिग्गहियागमणे अपरिग्गहियागमणे अणंगकीडा, परविवाहकरणे कामभोगतिव्वाभिलासे।

अर्थ—तदनन्तर श्रावक के चौथे व्रत 'स्वदार-संतोष' के पाँच अतिचार जानने योग्य है, सेवन करने योग्य नहीं हैं—१ इत्वरिकापरिगृहीतागमन २ अपरिगृहीतागमन ३ अनंगक्रीड़ा ४ परविवाहकरण ५ कामभोग-तीव्राभिलाष।

विवेचन—१ इत्वरिका परिगृहीतागमन—विवाह हो जाने के बाद भी उम्र, शारीरिक विकास आदि नहीं होने के कारण, मासिक-धर्म में नहीं आने आदि अनेक कारणों से जो भोग अवस्था को अप्राप्त है, ऐसी स्वस्त्री से गमन करना 'इत्वरिका परिगृहीतागमन' है।

२ अपरिगृहीतागमन—जिसके साथ सगाई तो हुई है, परंतु विवाह नहीं होने से जो अब तक अपरिगृहीता है, ऐसी स्ववाग्दत्ता कन्या से गमन करना अपरिगृहीता गमन है।

३ अनंगक्रीड़ा—कामभोग के अंग योनि और मेहन है। इनके अतिरिक्त अन्य अंग काम के अंग नहीं माने गए हैं, उनसे क्रीड़ा करना 'अनंगक्रीड़ा' है।

४ परविवाहकरण—जिनकी सगाई, विवाह अपने जिम्मे नहीं हो, उनकी सगाई करने की प्रेरणा करना, सहयोग देना, विवाह करवाना आदि को परविवाहकरण में गिना गया है।

५ कामभोग तीव्राभिलाषा—गौण रूप से पाँचों इंद्रियविषयों और मुख्य रूप से मैथुन में अत्यंत गृद्धि—मूर्च्छा भाव रख कर उन्हीं अध्यवसायों से युक्त रह कर व्रत की उपेक्षा करना, भोग-साधनों को बढ़ाना, 'कामभोगतीव्राभिलाष' है। 'वेद जनित बाधा' को शान्त करने की भावना के अतिरिक्त शेष सभी कार्यों के लिए यह अतिचार है। यथा—वाजीकरण करना, कामवर्द्धक पौष्टिक भस्में, रसायने औषधियाँ आदि लेना, वासनावर्द्धक पठन, कामवर्द्धक चित्रादि अवलोकन, अन्योन्य आसन, सौन्दर्य प्रसाधक सामग्री का प्रयोग आदि।

तयाणंतरं च णं इच्छापरिमाणस्स समणोवासएणं पंचअइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा, तं जहा—खेत्तवत्थुपमाणाइक्कमे, हिरण्णसुवण्णपमाणाइक्कमे,

दुपयचउप्पयपमाणाइक्कमे, धणधण्णपमाणाइक्कमे, कुवियप्पमाणाइक्कमे।

अर्थ—तदन्तर श्रावक के पाँचवें व्रत 'इच्छापरिमाण' के पाँच अतिचार श्रमणोपासक को जानने योग्य हैं, समाचरण योग्य नहीं—१ खुली या ढकी भूमि के परिमाण का अतिक्रमण (उल्लंघन) करना २ सोने-चाँदी की मर्यादा का अतिक्रमण ३ द्विपद—दास-दासी आदि, चतुष्पद— गाय-भैंस आदि के परिमाण का अतिक्रमण ४ मुद्रा आदि धन और गेहूँ आदि धान्य के परिमाण का अतिक्रमण करना और ५ कुविय के परिमाण का अतिक्रमण करना।

तयाणंतरं च णं दिसिवयस्स पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा, तं जहा—उड्ढदिसिपमाणाइक्कमे, अहोदिसिपमाणाइक्कमे, तिरियदिसिपमाणाइक्कमे, खेत्तवुड्ढी, सइअंतरद्धा।

अर्थ—तदन्तर 'दिशाव्रत' के पाँच अतिचार जानने योग्य हैं, आचरण योग्य नहीं हैं—१ ऊँची दिशा में जाने की मर्यादा का अतिक्रमण २ नीची दिशा के परिमाण का अतिक्रमण ३ चारों ओर की तिरछी दिशा के परिमाण का अतिक्रमण करना ४ क्षेत्र-वृद्धि—मर्यादित क्षेत्र को बढ़ाना ५ किए हुए भूमि परिमाण की विस्मृति से आगे जाना।

तयाणंतरं च णं उवभोगपरिभोगे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—भोयणाओ य कम्मओ य, तत्थ णं भोयणाओ समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा, तं जहा—सचित्ताहारे, सचित्तपडिबद्धाहारे, अप्पउलिओसहिभक्खणया, दुप्पउलिओसहिभक्खणया, तुच्छोसहिभक्खणया, कम्मओ णं समणोवासएणं पण्णरस कम्मादाणाइं जाणियव्वाइं ण समायरियव्वाइं, तं जहा—इंगालकम्मे, वणकम्मे, साडीकम्मे, भाडीकम्मे, फोडीकम्मे, दंतवाणिज्जे, लक्खवाणिज्जे, रसवाणिज्जे, विसवाणिज्जे, केसवाणिज्जे, जंतपीलणकम्मे, णिल्लंछणकम्मे, दवग्गि-दावणया, सर-दह-तलावसोसणया, असइजणपोसणया।

अर्थ—(सातवाँ) उपभोगपरिभोग दो प्रकार का है—भोजन विषयक और कर्म विषयक। भोजन की अपेक्षा श्रावक के पाँच अतिचार कहे गए जो जानने योग्य हैं आचरण योग्य नहीं हैं—

१ सचित्त वस्तु का आहार—जिसने सचित्त का त्याग कर दिया है, वह अनाभोग से सचित्त का आहार कर ले अथवा जिसने मर्यादा की है, उसके उपरांत सचित्ताहार करे तो यह अतिचार लगता है।

२ सचित्तप्रतिबद्धाहार—सचित्त से जुड़े हुए, संघट्टित आहार का प्रयोग।

३ अपक्वौषधि-भक्षणता—अग्नि आदि द्वारा नहीं पकाई गई, अशस्त्रपरिणत, तत्काल पीसी, मर्दन की गई चटनी आदि का भोजन।

४ दुष्पक्वौषधि-भक्षणता—अधकच्चे भुट्टे, सोट्ठे आदि खाना।

५ तुच्छौषधि-भक्षणता—फेंकने योग्य अंश अधिक और खाने योग्य कम हो, ऐसे तुच्छ आहार का सेवन। यथा—ईख, सीताफल आदि।

कर्म की अपेक्षा श्रावक को पन्द्रह कर्मादान जानने योग्य हैं, समाचरण करने योग्य नहीं—१ अंगारकर्म २ वनकर्म ३ शकटकर्म ४ भाडीकर्म ५ स्फोटकर्म ६ दन्त-वाणिज्य ७ लाक्षा-वाणिज्य ८ रस-वाणिज्य ९ विष-वाणिज्य १० केश-वाणिज्य ११ यंत्रपीलन-कर्म १२ निर्लाछन-कर्म १३ दवग्निदापनता १४ सर-द्रह-तालाब-शोषणता और १५ असतीजन-पोषणता।

विवेचन—१ अंगार कर्म—कोयले बनाना, कुंभकार का धंधा, चूने के भट्टे, सीमेंट कारखाने, सुनार, लुहार, भड़भूंजे, हलवाई, रंगरेज, धोबी आदि सभी के वे धंधे जिनमें अग्नि के आरम्भ की प्रधानता रहा करती है।

२ वनकर्म—वनस्पति के दस भेद हैं—मूल, कन्द, स्कन्ध, छाल, प्रवाल (कोमल पत्ते रूप) पत्र, पुष्प, फल एवं बीज। इन सब के लिए जो आरम्भ होता है, उस वन विषयक कर्म को 'वनकर्म' कहा जाता है। यथा—अड्ड के लिए धतूरे आदि की खेती, चाय, काफी, मेंहदी, फलों के बाग, फूलों के बगीचे, रज के, सरसों, धान आदि की खेती। हरे वृक्ष कटवाना, सुखाना, बेचना या ठेके पर लेना यह सब वनकर्म है। यानि कृषि का वनस्पतिजन्य एवं उपलक्षण से अन्य छःकाय का आरम्भ वनकर्म है। अभिधान राजेंद्र कोष भाग ६ पृ. ८०२ पर लिखा है कि—

"वनविषयं कर्म वनकर्म। वनच्छेदनविक्रयरूपे। यच्छिन्नाच्छिन्नानाम् च तरूखण्डानां पत्राणां पुष्पाणां फलानां च विक्रयणं वृत्तिकृतेन। छिन्नाछिन्न पत्रपुष्पफल-कंदमूलतृणकाष्ठकं वा वंशादिविक्रयः।

३ शकटकर्म—सवारी या माल ढोने के सभी तरह के वाहन व उसके पुर्जे बनाने का कार्य

'शकट कर्म' है। यथा—रेल, मोटर, स्कूटर, साइकिल, ट्रक, ट्रैक्टर आदि बनाने के कारखाने। लुहार, सुथार, आदि द्वारा गाड़ियाँ बनाना आदि।

४ भाटी कर्म—बैल, घोड़े ऊँट, मोटर आदि को भाड़े पर चलाना भाटी कर्म है।

५ स्फोटक कर्म—पृथ्वी, वनस्पति आदि फोड़ना फोडीकर्म है। यथा--खान, कुआ, बावड़ी, तालाब आदि खोदना, पत्थर निकालना, खेती के लिए जमीन की जुताई, धान का आटा या मूंग, उड़द, चने आदि की दाल बनाना, शालि से भूसा उतार कर चावल बनाना आदि कार्यों को मुख्य रूप से फोड़ीकर्म में गिना गया है। यहाँ गंभीरता से समझने की बात यह है कि खेती की पूर्ववर्ती क्रियाएँ-पृथ्वी पर हल जोतना आदि तथा पश्चाद्वर्ती क्रियाएँ गेंहू आदि का आटा या मूंग आदि की दाल बना कर देना या बेच कर आजीविका चलाना स्फोटक कर्म के अन्तर्गत है। जुताई के बाद निष्पत्ति की मध्यवर्ती क्रियाएं वनकर्म में मानी गई है। अतः खेती केवल स्फोटक कर्म ही नहीं, वनकर्म भी है। यह बात पूर्वाचार्यों ने स्पष्ट बतलाई है।

६ दंत-वाणिज्य—मुख्य अर्थ में हाथी दांत का व्यापार, उपलक्षण से ऊँट, बकरी, भेड़ आदि की जट-ऊन, गाय-भैंसादि का चमड़ा, हड्डियां, नाखून आदि त्रस जीवों के अवयव का व्यापार 'दंत-वाणिज्य' में गिना गया है।

७ लाक्षा-वाणिज्य—लाख का व्यापार मुख्य अर्थ में लिया गया है, मेनशील, धातकी, नील, साबुन, सज्जी, सोडा, नमक, रंग आदि का व्यापार भी 'अभिधान राजेंद्र कोष' भाग ६ पृ. ४९६-९७ पर लाक्षा-वाणिज्य में लिए गए हैं।

८ रसवाणिज्य—'अभिधान राजेन्द्र' भाग ६ पृ. ४९३ "मधुमद्यमांसभक्षणवसामज्जादुग्धदधि-घृततैलादिविक्रये। शहद, शराब, मांस, चर्बी, मक्खन, दूध, दही, घी, तेल आदि का व्यापार करना रस-वाणिज्य में गिना गया है। कोई कोई गुड़, शक्कर के व्यापार को भी इसमें मानते हैं।

९ केशवाणिज्य—दास-दासी का क्रय-विक्रय एवं गाय, भैंस, बकरी, भेड़, ऊँट, घोड़े आदि को खरीदने-बेचने का धंधा केशवाणिज्य में लिया गया है। अभि. भाग ३ पृ. ६६८।

१० विषवाणिज्य—सोमल आदि भांति-भांति के जहर, बंदूक, कटार, आदि अस्त्र-शस्त्र, हरताल, प्राणनाशक इन्जेक्शन, गोलियां, चूहे मारने की गोलियां, खेत में दिए जाने वाले रासायनिक खाद, पाउडर, छिड़कने की डी. डी. टी. आदि पाउडर, तथा वे समस्त वस्तुएं जिनसे प्राणान्त सम्भव है, पटाखें, बारूद आदि भी बेचना विषवाणिज्य में गिना गया है। साथ ही कुदाली, हल, फावड़े, गेंतियां, तगारियां, सेंबल, चूलिए आदि का व्यापार भी विषवाणिज्य में गिना है (अभि. भाग ६ पृ. १२५८)।

११ यंत्रपीलनकर्म—मूंगफली, एरण्डी, तिल, सरसों, राई, आदि का तेल निकालने की घाणियाँ, घाणे, गन्ने पेरने की घाणी, कुएँ से पानी निकालने के यंत्र आदि इसमें गिने जाते हैं। वैसे तो यंत्र (मशीन) द्वारा जीवों का जितना पीलन होता है, वे सभी छोटी-बड़ी मिलें, फेक्टरियाँ, आरा-मशीन, कारखाने सभी इस यंत्रपीलनकर्म के ही भेद हैं।

१२ निर्लाञ्छनकर्म—बकरी, भेड़ आदि के कान चीरना, घोड़े, बैल आदि को नपुंसक बनाना, नाक में नाथ डालना, ऊंट के नकेल डालना आदि कार्य। घोड़े के पांव में खुड़ताल लगाना और डाम देना भी इसमें लिया जाता है।

१३ दवाग्निदापनता—वन में सप्रयोजन या निष्प्रयोजन आग लगा कर जलाना। इससे त्रस और स्थावर प्राणियों का महासंहार होता है।

१४ सर-द्रह-तालाबशोषणता—चावल, चने आदि की खेती के लिए अथवा जलाशय को खाली करने के लिये तालाब, तलैया आदि का पानी बाहर निकाल देना, जिससे त्रस-स्थावर प्राणियों की घात होती है।

१५ असतिजनपोषणता—बाज, कुत्ते आदि पालना, सुरासुन्दरी वाले होटल चलना, गुण्डे पालना, फिल्मों अथवा सिनेमागृहों को आर्थिक-सहकार आदि, ये सभी कार्य जिनसे दुःशील एवं दुष्टों का पोषण हो।

तयाणंतरं च णं अणट्ठादण्डवेरमणस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा, तं जहा—कंदप्पे, कुक्कुइए, मोहरिए, संजुत्ताहिगरणे, उवभोगपरिभोगाइरित्ते।

अर्थ—श्रावक के आठवें व्रत अनर्थदण्डविरमण के पांच अतिचार जानने योग्य हैं, आचरण योग्य नहीं हैं—१ कंदर्प—कामविकार वर्द्धक हास्यादि से ओतप्रोत वचन बोलना २ कौत्कुच्य—हाथ, आंख, मुंह आदि की ऐसी चेष्टाएँ, जिनसे लोगों का मनोरंजन हो ३ मौखर्य—अनर्गल, असंबद्ध, क्लेशवर्द्धक एवं बहुत बोलना आदि ४ संयुक्ताधिकरण—ऊखल, मूसल, हल, कुदाल, कुल्हाड़ी, फावड़े, गेंती आदि के भिन्न अवयवों को संयुक्त कर रखना (यदि ये वस्तुएँ असंयुक्त और पृथक्-पृथक् रखी जाय, तो काम में नहीं आ सकती। अतः संयुक्त नहीं रखनी चाहिए, ताकि मना न करना पड़े) ५ उपभोगपरिभोगातिरिक्त—बिना आवश्यकता के उपभोगपरिभोग की सामग्री का अतिरिक्त संचय।

तयाणंतरं च णं सामाइयस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा, तं जहा—मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे, सामाइयस्स सइअकरणया, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया।

अर्थ—तदन्तर श्रमणोपासक को श्रावक के नववें व्रत सामायिक के पांच अतिचार जानने योग्य हैं, आचरण योग्य नहीं हैं। यथा;—

१ मनदुष्प्रणिधान—मनोयोग की दुष्प्रवृत्ति। मन के दस दोष लगाना।

२ वचनदुष्प्रणिधान—वचनयोग की दुष्प्रवृत्ति। वचन के दस दोष लगाना।

३ कायदुष्प्रणिधान—काययोग की दुष्प्रवृत्ति। काया के बारह दोष लगाना।

४ सामायिक की स्मृति नहीं रखना—'मैंने सामायिक कब ली थी' इस प्रकार सामायिक के समय का ज्ञान नहीं रहना। सामायिक को भूल कर सावद्य-प्रवृत्तियां करने लग जाना।

५ सामायिक का अनवस्थितकरण—अव्यवस्थित रीति से सामायिक करना और सामायिक का काल-मान पूर्ण हुए बिना ही सामायिक पार लेना आदि।

तयाणंतरं च णं देसावगासियस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा, तं जहा—आणवणप्पओगे, पेसवणप्पओगे, सद्दाणुवाए, रूवाणुवाए, बहियापोग्गलपक्खेवे।

अर्थ—दसवें व्रत-देशावकाशिक के पांच अतिचार जाने, परंतु आचरण नहीं करे। यथा—१ आनयन-प्रयोग २ प्रेष्य-प्रयोग ३ शब्दानुपात ४ रूपानुपात ५ बहिर्पुद्गल प्रक्षेप।

विवेचन—१ देसावगासियं—"दिग्व्रतगृहीतस्य दिक्परिणामस्य प्रतिदिनं संक्षेपकरणलक्षणे सर्व व्रतसंक्षेपकरण लक्षणे वा।" अभि. भाग ४ पृ. २६३२। अर्थ—छठे व्रत दिशा-परिमाण को प्रतिदिन संक्षिप्त करना तथा सभी व्रतों के परिमाण को संक्षिप्त करना 'देशावकाशिक' कहलाता है।

दिशा-मर्यादा करने से वह स्वयं तो मर्यादितभूमि से बाहर नहीं जा सकता, परन्तु दूसरों को भेज कर कोई वस्तु मँगवाना 'आनयन-प्रयोग' है। कोई वस्तु भिजवाना 'प्रेष्य-प्रयोग' है। (संवर आदि में मकान से बाहर रहे व्यक्ति आदि को) बुलाने या भेजने के लिए शब्दादि से संकेत, आकृति से ईशारा कर के अथवा कंकर आदि फेंक कर अपनी उपस्थिति बताना अथवा कार्य का संकेत देना क्रमशः 'शब्दानुपात, रूपानुपात और बहिर्पुद्गल-प्रक्षेप' है।

तयाणंतरं च णं पोसहोववासस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा, ण समायरियव्वा, तं जहा—अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय-सिज्जासंथारे, अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय-सिज्जासंथारे, अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय-उच्चार-पासवणभूमी अप्प-मज्जिय-दुप्पमज्जिय-उच्चारपासवणभूमी, पोसहोववासस्स सम्मं अणणुपालणया।

अर्थ—पौषधोपवास नामक ग्यारहवें व्रत के पांच अतिचार जानने योग्य हैं आचरण योग्य नहीं हैं—

१ अप्रत्युपेक्षित-दुष्प्रत्युपेक्षित शय्या-संस्तारक--बिछौने, ओढ़ने तथा आसनादि की प्रतिलेखना नहीं करना, तथा ध्यानपूर्वक प्रतिलेखन न कर बेगार टालना।

२ अप्रमार्जित-दुष्प्रमार्जित शय्या-संस्तारक--बिछौने आदि की विधिवत् प्रमार्जना नहीं करना और उपेक्षापूर्वक प्रमार्जना करना।

३ अप्रत्युपेक्षित-दुष्प्रत्युपेक्षित उच्चार-प्रस्रवण भूमि—मल-मूत्र आदि परठने के स्थान की प्रतिलेखना नहीं करना अथवा अविधि से उपेक्षापूर्वक करना।

४ अप्रमार्जित-दुष्प्रमार्जित उच्चार-प्रस्रवण भूमि—मल-मूत्र परठने से पूर्व उस भूमि को नहीं पूंजना अथवा पूर्ण विधि से पूरा स्थान नहीं पूंजना।

५ पौषधोपवास का सम्यक् अप्रपालन—पौषध का विधिपूर्वक पालन नहीं करना। इसमें शेष सारे दोषों का समावेश है।

विवेचन—१ पौषध—"पुष्टिं धर्मस्य दधातीति पौषधः"—धर्म को पुष्ट करने वाली क्रिया विशेष। २ उववास—उपवास—"यामाष्टकम् अभोजनम् उपवास स विज्ञेयः। उपावृत्तस्य दोषेभ्यः, सम्यग्वासो गुणैः सह उपवासः स विज्ञेयः सर्व भोगविवर्जितः"—सूर्योदय से अगले सूर्योदय तक के लिए आहार का प्रतिषेध उपवास है। पापों व दोषों से दूर रह कर सम्यग् गुणों एवं धर्म के समीप रहना, सभी भोगों का वर्जन करना उपवास है। आत्मा के समीप वास करना उपवास है। ३ सिज्जा—शय्या—पौषध करने का स्थान। ४ संथार—संस्तार--दर्भादि की शय्या (बिछौना) जिस पर सोया जाय।

तयाणंतरं च णं अतिहिसंविभागस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणि-यव्वा ण समायरियव्वा तं जहा—सचित्तनिक्खेवणया, सचित्तपिहणया, काला-इक्कमे, परववदेसे, मच्छरिया।

अर्थ—श्रावक के बारहवें व्रत 'अतिथिसंविभाग' के पांच अतिचार जाने परन्तु आचरण नहीं करे। यथा—

१ सचित्त निक्षेप—अचित्त निर्दोष वस्तु को नहीं देने की बुद्धि से सचित्त पर रख देना।

२ सचित्त पिधान—कुबुद्धि पूर्वक अचित्त वस्तु को सचित्त से ढक देना।

३ कालातिक्रम—गोचरी का समय चुका कर शिष्टाचार के लिए बाद में दान देने की तैयारी दिखाना।

४ परव्यपदेश—नहीं देने की बुद्धि से अपने आहार को दूसरों का बताना।

५ मत्सरिता—ईर्ष्या वश दान देना अथवा दूसरे दाताओं पर ईर्ष्याभाव लाना आदि।

तयाणंतरं च णं अपच्छिममारणांतिय-संलेहणा-झूसणा-आराहणाए पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा, तं जहा—इहलोगासंसप्पओगे, परलोगासंसप्पओगे जीवियासंसप्पओगे मरणासंसप्पओगे कामभोगासंसप्पओगे ॥सू. ८॥

अर्थ—तदन्तर अपश्चिम (जीवन के अंत में की जाने वाली) मारणांतिक (मरण के साथ ही जिसकी समाप्ति होगी) संलेखना (कषाय और शरीर को क्षीण करना) झूसणा आराधना (आसेवना) के पाँच अतिचार कहे गए जो जानने योग्य हैं, आचरण योग्य नहीं हैं—

१ इहलोकाशंसा प्रयोग—आगामी मनुष्यभव में राजा-चक्रवर्ती आदि बनने की इच्छा करना।

२ परलोकाशंसा प्रयोग—देवादि में इंद्र अहमिंद्र, लोकपाल आदि बनने की इच्छा करना।

३ जीविताशंसा प्रयोग—'शरीर स्वस्थ है, लोगों में संथारे के समाचार से कीर्ति फैल रही है,' अतः लम्बे काल तक जीवित रहूँ, ऐसी इच्छा करना।

४ मरणाशंसा प्रयोग—बिमारी व कमजोरी ज्यादा होने से शीघ्र मरने की इच्छा करना।

५ कामभोगाशंसा प्रयोग—मेरे संयम तप के फलस्वरूप मुझे उत्तम वैविक और

मानवीय भोगों की प्राप्ति हो, ऐसी इच्छा करना।

आनन्दजी का अभिग्रह

तए णं से आणंदे गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं सावयधम्मं पडिवज्जइ पडिवज्जित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—"णो खलु मे भंते! कप्पइ अज्जप्पभिइं अण्णउत्थिए वा अण्णउत्थियदेवयाणि वा अण्णउत्थियपरिग्गहियाणि वा✽ वंदित्तए वा णमंसित्तए वा, पुव्विं अणालत्तेणं आलवित्तए वा संलवित्तए वा, तेसिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दाउं वा अणुप्पदाउं वा, णण्णत्थ रायाभिओगेणं, गणाभिओगेणं, बलाभिओगेणं, देवयाभिओगेणं, गुरुनिग्गहेणं, वित्तिकंतारेणं।

✽ आनन्दजी की प्रतिज्ञा के इस पाठ में प्रक्षेप भी हुआ है। प्राचीन प्रतियों में न तो 'चेइयाइं' शब्द था और न 'अरिहंत चेइयाइं'। भगवान् महावीर प्रभु के प्रमुख उपासकों के चरित्र में मूर्तिपूजा का उल्लेख नहीं होना, उस पक्ष के लिये अत्यन्त खटकने वाली बात थी। इसलिये इस कमी को दूर करने के लिए किसी मत-प्रेमी ने पहले 'चेइयाइं' शब्द मिलाया। कालान्तर में किसी को यह भी अपर्याप्त लगा, तो उसने अपनी ओर से एक शब्द और बढ़ा कर 'अरिहंत चेइयाइं' कर दिया। किन्तु यह प्रक्षेप भी व्यर्थ रहा। क्योंकि इससे भी उन उपासकों की साधना और आराधना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह तो तब होता कि उनके सम्यक्त्व, व्रत या प्रतिमा आराधना में, मूर्ति के नियमित दर्शन करने, पूजन-महापूजन करने और तीर्थयात्रादि का उल्लेख होता। ऐसा तो कुछ भी नहीं है, फिर इस प्रपंच से होना भी क्या है?

इस पाठ के विषय में जो खोज हुई है, उसका विवरण 'श्री अगरचन्द भैरोंदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था बीकानेर' से प्रकाशित 'जैनसिद्धांत बोल संग्रह' भाग ३ के परिशिष्ठ से साभार उद्धृत करते हैं—

उपासकदशांग के आनन्दाध्ययन में नीचे लिखा पाठ आता है—"नो खलु मे भंते कप्पइ अज्जप्पभिइं अन्नउत्थिए वा, अन्नउत्थियदेवयाणि वा, अन्नउत्थियपरिग्गहियाणि वा वंदित्तए वा नमंसित्तए वा इत्यादि।

अर्थात् हे भगवान्! मुझे आज से लेकर अन्य यूथिक, अन्ययूथिक के देव अथवा अन्य यूथिक के द्वारा सम्मानित या गृहीत को वन्दना नमस्कार करना नहीं कल्पता। इस जगह तीन प्रकार के पाठ उपलब्ध होते हैं—

(क) अन्न उत्थिय परिग्गहियाणि।

(ख) अन्न उत्थियपरिग्गहियाणि चेइयाइं।

(ग) अन्न उत्थियपरिग्गहियाणि अरिहंत चेइयाइं।

विवाद का विषय होने के कारण इस विषय में प्रति तथा पाठों का खुलासा नीचे लिखे अनुसार है—

[क] अन्न उत्थियपरिग्गहियाणि ' यह पाठ बिब्लोथिका इण्डिका, कलकत्ता द्वारा ई. सन् १८६० में प्रकाशित अंग्रेजी अनुवाद सहित उपासकदशांग सूत्र में है। इसका अनुवाद और संशोधन डोक्टर ए. एफ. रुडल्फ हार्नले पी. एच. डी. ट्यूबिंजन फेलो आफ कलकत्ता युनिवर्सिटी, आनरेरी फाइलोलोजिकल सेक्रेट्री टु दी एसिआटिक सोसाइटी आफ बंगाल ने किया है। उन्होंने टिप्पणी में पांच प्रतियों का उल्लेख किया है, जिन का नाम A. B. C. D. और E. रक्खा है। A. B. और D. में (ख) पाठ है। C. और E. में (ग)

हार्नल साहेब ने ' चेइयाइं ' और ' अरिहंतचेइयाइं ' दोनों प्रकार के पाठ को प्रक्षिप्त माना है। उनका कहना है— ' देवयाणि ' और ' परिग्गहियाणि ' पदों में सूत्रकार ने द्वितीया के बहुवचन में ' णि ' प्रत्यय लगाया है। ' चेइयाइं ' में ' इं ' होने से मालूम पड़ता है कि यह शब्द बाद में किसी दूसरे का डाला हुआ है। हार्नले साहेब ने पांचों प्रतियों का परिचय इस प्रकार दिया है।

(A) यह प्रति इण्डिया आफिस लाइब्रेरी कलकत्ते में है। इसमें ४० पन्ने हैं, प्रत्येक पन्ने में १० पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में ३८ अक्षर हैं। इस पर सम्वत् १५६४, सावन सुदी १४ का समय दिया हुआ है। प्रति प्रायः शुद्ध है।

(B) यह प्रति बंगाल एशियाटिक सोसाइटी की लाइब्रेरी में है। बीकानेर महाराजा के भण्डार में रक्खी हुई पुरानी प्रति की यह नकल है। यह नकल सोसाइटी ने गवर्नमेंट आफ इण्डिया के बीच में पड़ने पर की थी। सोसाइटी जिस प्रति की नकल करवाना चाहती थी, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित बीकानेर भण्डार की सूची में उस का १५१३ नम्बर है। सूची में उसका समय ११६७ तथा उसके साथ उपासकदशा विवरण नाम की टीका का होना भी बताया गया है। सोसाइटी की प्रति पर फागुन सुदी ६ गुरुवार सं. १८२४ दिया हुआ है। इसमें कोई टीका भी नहीं है। केवल गुजराती टब्बा अर्थ है। उस प्रति का प्रथम और अंतिम पत्र बीच की पुस्तक के साथ मेल नहीं खाता है। अंतिम पृष्ठ टीका वाली प्रति का है। सूची में दिया गया विवरण इन पृष्ठों से मिलता है। इससे मालूम पड़ता है कि सोसाइटी के लिये किसी दूसरी प्रति की नकल हुई है। ११६७ सम्वत् उस प्रति के लिखने का नहीं किन्तु टीका के बनाने का मालूम पड़ता है। यह प्रति बहुत सुन्दर लिखी हुई है। इसमें ८१ पन्ने हैं। प्रत्येक पन्ने में छः पंक्तियां और प्रत्येक पंक्ति में २८ अक्षर हैं। साथ में टब्बा है।

(C) यह प्रति कलकत्ते में एक यती के पास है। इसमें ४१ पन्ने हैं। मूल पाठ बीच में लिखा हुआ है और संस्कृत टीका ऊपर तथा नीचे। इसमें सम्वत् १९१६ फागुन सुदी ४ दिया हुआ है। यह प्रति शुद्ध और किसी विद्वान द्वारा लिखी हुई मालूम पड़ती है, अन्त में बताया गया है कि इसमें ८१२ श्लोक मूल के और १०१६ टीका के हैं।

(D) यह भी उन्हीं यतीजी के पास है। इसमें ३३ पन्ने हैं। ६ पंक्ति और ४८ अक्षर हैं। इस पर मिगसर बदी ५, शुक्रवार सम्वत् १७४५ दिया हुआ है। इसमें टब्बा है। यह श्री रेनी नगर में लिखी गई है।

(E) यह प्रति मुर्शिदाबाद वाले राय धनपतिसिंहजी द्वारा प्रकाशित है।

इनके सिवाय श्री अनूप संस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर (बीकानेर का प्राचीन पुस्तक भण्डार जो कि पुराने किले में है) में उपासकदशांग की दो प्रतियां हैं। उन दोनों में **'अन्नउत्थियपरिग्गहियाणि चेइआइं'** पाठ है। पुस्तकों का परिचय F. और G. के नाम से नीचे दिया जाता है।

अर्थ—व्रतों के अतिचार सुनने के बाद आनन्दजी ने पाँच अणुव्रत तथा सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का श्रावकधर्म स्वीकार किया तथा वंदना-नमस्कार कर कहने लगे—"हे भगवन् ! आज से मुझे अन्यतीर्थियों के साधुओं को, अन्यतीर्थियों के प्रवर्तकों एवं अन्यतीर्थि प्रगृहीत जैन साधुओं को वंदन-नमस्कार करना नहीं कल्पता है। उनसे बोलाए बिना आलाप-संलाप करना नहीं कल्पता है। उन्हें पूज्य मान कर आहार-पानी बहराना नहीं कल्पता है। परन्तु राजा की आज्ञा से, संघ—समूह के दबाव से, बलवान के भय से, देव के भय से, माता-पिता आदि ज्येष्ठजनों की आज्ञा से और अटवी में भटक जाने पर अथवा आजीविका के कारण कठिन परिस्थिति को पार करने के लिए, किन्हीं मिथ्यादृष्टि देवादि को वंदनादि करनी पड़े, तो आगार (छूट) है।

विवेचन—'अण्णउत्थियाणि' का अर्थ है—अन्यतीर्थिक साधु। यद्यपि इसमें सामान्य गृहस्थ का भी समावेश हो सकता है, परन्तु सामान्यतया उनका सम्पर्क मिथ्यात्व का कारण नहीं बनता, उत्तरा. अ. १० गाथा. १८ में भी 'कुतित्थी' शब्द से अन्यदर्शनी साधुओं का ही ग्रहण हुआ है। 'अण्णउत्थिय-देवयाणि' का अर्थ है—अन्यतीर्थियों के देव। वे पुरुष जो अमुक धर्म के प्रवर्तक संस्थापक अथवा आचार्य रूप हों। जैसे आनन्दजी के युग में—गौतमबुद्ध बौद्धधर्म के प्रवर्तक थे। मंखलिपुत्र गोशालक भी आजीवक मत के देव रूप थे। 'दिव्यावदान' नामक बौद्ध ग्रंथ में ऐसे छः व्यक्तियों का नामोल्लेख है—१ पूरण काश्यप २ मंखलिपुत्र गोशालक ३ संजय वेरट्ठीपुत्र ४ अजित केश कम्बल ५ कुकुद कात्यायन और ६ निर्ग्रंथ ज्ञातपुत्र।

"तेन खलु समयेन राजगृहे नगरे षट् पूर्णाद्याः शास्तारोऽसर्वज्ञाः सर्वज्ञमानिनः प्रतिवसंतिस्म। तद्यथा—पूरणः काश्यपो मस्करी गोशालिपुत्रः संजयी वेरट्टीपुत्रो अजित केश कम्बलः कुकुदः कात्यायनो निर्ग्रंथो ज्ञातपुत्रः।"

(F) लाइब्रेरी पुस्तक नं. ६४६७ (उपासग सूत्र) पन्ने २४ एक पृष्ठ में १३ पंक्तियाँ, एक पंक्ति में ४२ अक्षर, अहमदाबाद आंचल गच्छ श्री गुलाबपार्श्वनाथ की प्रति, पुस्तक में सम्वत् नहीं है। चौथे पत्र में नीचे लिखा पाठ है—'अण्णउत्थियपरिग्गहियाइं वा चेइयाइं' पत्र में बांई तरफ शुद्ध किया हुआ है—'अण्णउत्थियाइं वा अण्णउत्थिय-देवयाइं वा' पुस्तक अधिकतर अशुद्ध है। बाद में शुद्ध की गई है, श्लोक संख्या ६१२ दी है।

(G) लाइब्रेरी पुस्तक नं. ६४६४ (उपासकदशावृत्ति पंच पाठ सह) पत्र ३३ श्लोक ९०० टीका ग्रन्थाग्र ९००, प्रत्येक पृष्ठ पर १६ पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में ३२ अक्षर हैं। पत्र आठवें पंक्ति पहली में नीचे लिखा पाठ है—

'अण्णउत्थियपरिग्गहियाई वा चेइयाई'। यह पुस्तक पडिमात्रा में लिखी गई है और अधिक प्राचीन मालूम पड़ती है। पुस्तक पर सम्वत् नहीं है।

इस प्रकार के अन्यतीर्थिक देवों की वंदना नमस्कार आदि नहीं करने का आनन्दजी ने अभिग्रह लिया था।

'अण्णउत्थियपरिग्गहियाणि'—यहाँ पाठ-भेद है और विवादजनक है, साथ ही टीकाकार का किया हुआ अर्थ तो अपने समय में पूर्णरूप से प्रसरी और जमी हुई मूर्तिपूजा से प्रभावित है।

और 'चेइय'—चैत्य शब्द का अर्थ मात्र प्रतिमा ही नहीं होता। प्रसिद्ध जैनाचार्य पूज्य श्री १००८ श्री जयमलजी म. सा. ने 'चेइय' शब्द के एक सौ बारह अर्थों की खोज की। 'जयध्वज' पृ. ५७३ से ५७९ तक ये देखे जा सकते हैं। वहाँ अंत में लिखा है—

"इति अलंकरणे दीर्घ ब्रह्माण्डे सुरेश्वर वार्तिके प्रोक्तम् प्रतिमा चेइय शब्दे नाम १० मो छे। चेइय ज्ञान नाम पांचमो छे। चेइय शब्दे यति = साधु नाम सातमुं छे। पछे यथायोग्य ठामे जे नाम हुवे ते जाणवो। सर्व चैत्य शब्द ना आंक ५७ अने चेइय शब्दे ५५ सब ११२ लिखितं।"

"पू. भूधरजी तत्शिष्य ऋषि जयमल नागौर मध्ये सं. १८०० चैत सुदी १० दिने।"

आनन्दजी के अभिग्रह वर्णन में तथाकथित 'चेइयाई' का प्रासंगिक अर्थ यह है कि—

"मैं अन्यतीर्थियों द्वारा प्रगृहीत साधुओं को वंदना-नमस्कार नहीं करूँगा।" यदि हम कुछ क्षणों के लिए मानलें कि अन्यतीर्थियों द्वारा प्रगृहीत अरिहंत प्रतिमा को वंदना नमस्कार नहीं करने का नियम लिया, किंतु वंदना-नमस्कार के बाद जो 'बिना बोलाए नहीं बोलना' तथा 'आहार-पानी देने' की बात है, उसकी संगति कैसे होगी? वंदना-नमस्कार तो प्रतिमा को भी किया जा सकता है, परन्तु बिना बोलाए आलाप-संलाप और चारों प्रकार के आहार देने का व्यवहार प्रतिमा से तो हो ही नहीं सकता। यह कैसे संगत होगा? पहले जो सलिंगी या साधर्मी साधु था, बाद में वह अन्यतीर्थियों में चला गया है, तो वह स्वपक्ष एवं कुशील है। उसे वंदना-नमस्कार नहीं करने का नियम सम्यक्त्व की मूलभूमिका है। इसी उपासकदशा में आगे पाठ आया है कि सकडालपुत्र पहले गोशालक का श्रावक था, बाद में भगवान् के उपदेश से जैन श्रावक बना, फिर गोशालक ने उसे अपना बनाना चाहा। ज्ञाताधर्मकथांग, सूत्रकृतांग, निरयावलिका पंचक, भगवती आदि में अनेकों वर्णन मिलते हैं, जहाँ स्वमत से परमत में तथा परमत से स्वमत में आने के उल्लेख है। अतः परमतगृहीत जैन साधुओं को 'अण्ण उत्थियपरिग्गहियाणि' अर्थ मानना उचित लगता है।

कप्पइ मे समणे णिग्गंथे फासुएणं एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं पीढ-फलग-सिज्जा-संथारएणं ओसहभेसज्जेण य

पडिलाभेमाणस्स विहरित्तए त्ति कट्टु इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ, अभिगिण्हित्ता पसिणाइं पुच्छइ, पुच्छित्ता अट्ठाइं आदियइ, आदिइत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदइ, वंदित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ दूइपलासाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव वाणियगामे णयरे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सिवाणंदं भारियं एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिए ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे णिसंते सेऽवि य धम्मे मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए, तं गच्छं णं तुमं देवाणुप्पिए ! समणं भगवं महावीरं वंदाहि जाव पज्जुवासाहि, समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जाहि' ॥ ७ ॥

अर्थ—श्रमण-निर्ग्रंथों को प्रासुक-एषणीयअशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण, पाठ, बाजोट, उपाश्रय और घास आदि का संस्तारक, औषधि, भेषज, ये चौदह प्रकार की सामग्री बहराना मुझे कल्पता है। ऐसा अभिग्रह धारण कर और प्रश्नादि पूछ कर, अर्थ धारण कर भगवान् को तीन बार वंदना कर के दूतिपलाश उद्यान से अपने घर आए एव अपनी पत्नी शिवानंदा से इस प्रकार कहने लगे—"हे देवानुप्रिये ! मैंने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समीप धर्म सुना। वह धर्म मुझे अच्छा लगा। उस पर मेरी गाढ़ी रुचि हुई है। हे प्रिये ! तुम भी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की सेवा में जा कर, वंदना-नमस्कार कर, पर्युपासना करो तथा पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप श्रावक-धर्म स्वीकार करो।"

तएणं सा सिवाणंदा भारिया आणंदेणं समणोवासएणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव लहुकरण जाव पज्जुवासइ। तएणं समणे भगवं महावीरे सिवानंदाए तीसे य महइ जाव धम्मं कहेइ, तए णं सा सिवानंदा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठ जाव गिहिधम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता तमेव धम्मियं जाणप्पवरं दुरूहइ दुरूहित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया ॥सू. ८॥

अर्थ-- आनन्द श्रमणोपासक से भगवान् की धर्मदेशना एवं व्रत-धारण की बात सुन कर शिवानन्दा बहुत प्रसन्न हुई। उसने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुला कर कहा—'हे देवानुप्रियो ! जिसके उपकरण सुकुमार एवं शीघ्र गति युक्त हैं ऐसा अतीव शोभनीय रथ उपस्थित करो।' रथ लाया जाने पर उसमें बैठ कर भगवान् की सेवा में गई। भगवान् ने उसे तथा अन्य परिषद को धर्मदेशना फरमाई। आनन्द श्रमणोपासक की भाँति शिवानन्दा ने भी श्राविका के बारह व्रत धारण किए। भगवान् को वन्दना-नमस्कार कर, रथ में बैठ कर अपने घर आ गई।

'भंते' त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—'पहू णं भंते ! आणंदे समणोवासए देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे जाव पव्वइत्तए ?' 'णो इणट्ठे समट्ठे, गोयमा ! आणंदे णं समणोवासए बहूइं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणिहिइ पाउणित्ता जाव सोहम्मे कप्पे अरुणे विमाणे देवत्ताए उववज्जिहिइ। तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, तत्थ णं आणंदस्सऽवि समणोवासगस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ बहिया जाव विहरइ।

अर्थ— भगवान् गौतमस्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना-नमस्कार कर पूछा—'हे भगवन् ! क्या आनन्द श्रमणोपासक आपके पास दीक्षित होंगे' ? भगवान् ने फरमाया—'हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं। आनन्द श्रमणोपासक बहुत वर्षों तक श्रावक-पर्याय का पालन कर प्रथम देवलोक सौधर्म-कल्प के अरुण नामक विमान में उत्पन्न होगा। वहाँ अनेक देवों की स्थिति चार पल्योपम की कही गई है, तदनुसार आनन्द की भी चार पल्योपम की देव-स्थिति होगी। किसी दिन विहार कर भगवान् अन्यत्र पधार गए।

तए णं से आणंदे समणोवासए जाए अभिगयजीवाजीवे जाव पडिलाभेमाणे विहरइ। तए णं सा सिवाणंदा भारिया समणोवासिया जाया जाव पडिलाभेमाणी विहरइ ॥ सू. ९ ॥

अर्थ—आनन्द गाथापति अब आनन्द श्रमणोपासक हो गए, वे जीव-अजीव आदि नव तत्त्वों के ज्ञाता यावत् साधु-साध्वियों को प्रतिलाभित करते हुए काल यापन करने लगे। शिवानन्दा भी श्रमणोपासिका बन गई।

तए णं तस्स आणंदस्स समणोवासगस्स उच्चावएहिं सीलव्वयगुणवेरमण-पच्चक्खाणपोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेमाणस्स चोद्दस संवच्छराइं वइक्कंताइं, पण्णरसमस्स संवच्छरस्स अंतरावट्टमाणस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकाल-समयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—एवं खलु अहं वाणियगामे णयरे बहूणं राईसर जाव सयस्सवि य णं कुडुम्बस्स जाव आधारे, तं एएणं विक्खेवेणं अहं णो संचाएमि समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। तं सेयं खलु ममं कल्लं जाव जलंते विउलं असणं० जहा पूरणो जाव जेट्ठपुत्तं कुडुम्बे ठवेत्ता, तं मित्तं जाव जेट्ठपुत्तं च आपुच्छित्ता कोल्लाए सण्णिवेसे णाय-कुलंसि पोसहसालं पडिलेहित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

अर्थ—आनन्द श्रमणोपासक को शीलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत तथा पौषधोपवास आदि उत्तम व्रतों का निर्दोष रीति से पालन करते चौदह वर्ष बीत गए। पन्द्रहवें वर्ष के किसी दिन रात्रि के चौथे प्रहर में धर्मजागरण करते हुए उन्हें विचार आया कि "मैं बहुत-से राजा, ईश्वर आदि लोगों तथा अपने कुटुम्ब के लिए आधारभूत आदि हूँ। वे अनेक विषयों में मुझ-से परामर्श करते हैं। अतः इससे भगवान् द्वारा बताई गई धर्म-साधना में विक्षेप होता है। अतः मेरे लिए यह उचित होगा कि सूर्योदय होने पर पूरण गाथापति की भाँति विपुल आहार-पानी बना कर मित्र-जाति जनों को आमंत्रित कर उन्हें जिमाऊँ, तथा उनकी साक्षी से बड़े पुत्र को मेरे स्थान नियुक्त करूँ, तथा उसे पूछ कर कोल्लाक सन्निवेश में जो ज्ञातकुल की पौषधशाला है, वहाँ रह कर भगवान् महावीर स्वामी द्वारा फरमाई गई धर्म-आराधना करूँ।

एवं संपेहेइ संपेहित्ता कल्लं विउलं तहेव जिमियभुत्तुत्तरागए तं मित्त जाव विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता तस्सेव मित्त जाव पुरओ जेट्ठपुत्तं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—एवं खलु पुत्ता! अहं वाणियगामे बहूणं राईसर जाव सयस्स वि य णं कुडुंबस्स जाव विहरित्तए, तं सेयं खलु मम इयाणिं तुमं सयस्स कुडुम्बस्स मेढिं पमाणं आहारं आलंबणं ठवेत्ता जाव विहरित्तए। तए णं जेट्ठपुत्ते आणंदस्स समणोवासगस्स तहत्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ।

अर्थ—इस प्रकार विचार कर के प्रातःकाल होने पर विपुल अशन-पान-खादिम-स्वादिम बनवाया और मित्रों तथा स्वजन-सम्बन्धियों को आमंत्रित किया। आहार, पानी, वस्त्र, गन्ध, माला, अलंकार आदि से उन्हें सत्कार-सम्मान देकर ज्येष्ठ पुत्र से कहा—'हे पुत्र! मैं वाणिज्यग्राम नगर में बहुत-से राजेश्वर आदि लोगों द्वारा माननीय यावत् विचार-विमर्श योग्य हूं। अब यह श्रेयस्कर है कि तुम यह भार सम्भालो। अपने कुटुम्ब एवं दूसरों के लिए मेढ़ीभूत प्रमाणभूत एवं सहायक बनो।' ज्येष्ठ पुत्र ने विनयपूर्वक स्वीकार किया।

तएणं से आणंदे समणोवासए तस्सेव मित्त जाव पुरओ जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठवेइ ठवित्ता एवं वयासी—"मा णं देवाणुप्पिया! तुब्भे अज्जप्पभिइं केइ मम बहुसु कज्जेसु जाव आपुच्छउ वा पडिपुच्छउ वा ममं अट्ठाए असणं वा ४ उवक्खडेउ वा उवकरेउ वा। तए णं से आणंदे समणोवासए जेट्ठपुत्तं मित्तणाइं आपुच्छइ आपुच्छित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता वाणियगामं मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव कोल्लाए सण्णिवेसे जेणेव णायकुले जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता पोसहसालं पमज्जइ, पमज्जित्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता दब्भसंथारयं संथरइ, दब्भसंथारयं दुरूहइ दुरूहइत्ता पोसहसालाए पोसहिए दब्भसंथारोवगए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।१०।

अर्थ—तदनन्तर आनन्द श्रमणोपासक ने सभी के सामने ज्येष्ठ-पुत्र को कुटुम्ब का मुखिया नियुक्त किया और कहा—"हे देवानुप्रियो! आज से आप लोग मुझ-से किसी

भी सांसारिक कार्य के लिए मत पूछना, मेरे लिए आहारादि भी मत बनाना।" इस प्रकार ज्येष्ठ-पुत्र और मित्र-परिजन आदि को पूछ कर आनन्दजी अपने घर से निकले और राजमार्ग से होते हुए कोल्लाक सन्निवेशस्थ पौषधशाला में आए और पौषधशाला का प्रमार्जन किया। फिर लघुनीत-बड़ीनीत परठने योग्य स्थान की प्रतिलेखना की, दर्भ का संस्तारक बिछाया और उस पर बैठ कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा उपदिष्ट धर्मप्रज्ञप्ति को ग्रहण कर रहने लगे।

तए णं से आणंदे समणोवासए उवासगपडिमाओ उवसंपज्जित्ता णं विहरइ, पढमं उवासगपडिमं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएणं फासेइ पालेइ सोहेइ तीरेइ कित्तेइ आराहेइ। तए णं से आणंदे समणोवासए दोच्चं उवासगपडिमं एवं तच्चं चउत्थं पंचमं छट्ठं सत्तमं अट्ठमं णवमं दसमं एक्कारसमं जाव आराहेइ ॥ सू. १३ ॥

अर्थ--आनन्द श्रमणोपासक ने श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं को ग्रहण किया। प्रथम प्रतिमा को सूत्रानुसार, कल्पानुसार, मार्गानुसार, तथ्यानुसार सम्यक् रूप से काया से स्पर्शना की, पालन किया, शोधन किया, कीर्तन किया, आराधना की। प्रथम प्रतिमा की स्पर्शना यावत् आराधना के बाद दूसरी यावत् तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी, सातवीं आठवीं, नौवीं, दसवीं, और ग्यारहवीं प्रतिमा की आराधना की।

विवेचन—प्रतिमा का अर्थ है—'अभिग्रह विशेष, नियम विशेष।' श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएँ कही गई हैं--

(१) दर्शन प्रतिमा---इसमें श्रावक का सम्यग्दर्शन विशेष शुद्ध होता है। निर्दोष—निरतिचार और आगार-रहित पालन किया जाता है। वह लौकिक देव और पर्वों की आराधना नहीं करता और निर्ग्रंथ-प्रवचन को ही अर्थ-परमार्थ मान कर शेष को अनर्थ स्वीकार करता है।

(२) व्रत प्रतिमा--इसमें पाँच अणुव्रत व तीन गुणव्रतों का नियमा पालन होता है। आगार और अतिचार कम तथा भाव-शुद्धि अधिक होती है।

(३) सामायिक प्रतिमा—तीसरी प्रतिमा में सामायिक एवं देशावगासिक व्रत धारण किये हो जाते हैं। सामायिक व्रत अधिक समय और विशुद्ध किये जाते हैं।

(४) पौषध प्रतिमा—इसमें अष्टमी, चतुर्दशी तथा अमावस्या-पूर्णिमा को पौषध करना अनिवार्य होता है। वह पौषध में दिन में नींद नहीं ले सकता, प्रतिलेखन-प्रमार्जन, ईर्यापथिक प्रतिक्रमणादि में प्रमाद नहीं करता। यह प्रतिमा चार मास की है।

(५) कायोत्सर्ग प्रतिमा—चौथी प्रतिमा वाला पौषध की रात्रि को कायोत्सर्ग न करे, तो भी कल्प्य है, परन्तु इसमें खड़े-खड़े, या बैठे-बैठे या अशक्ति हो तो सोए-सोए कायोत्सर्ग करना आवश्यक है। दूसरी विशिष्टता यह है कि इसके धारक का दिवा-ब्रह्मचारी होना आवश्यक है। रात्रि-मर्यादा भी होनी आवश्यक है। इसी कारण इस प्रतिमा का समवायांग में 'दिया बंभयारी रत्ति परिमाणकडे' नाम दिया है। इस प्रतिमा की आराधना जघन्य एक, दो, दिन तथा उत्कृष्ट पाँच मास तक होती है। इसमें धोती की लाँग खुली रखनी होती है तथा रात्रि-भोजन का त्याग भी आवश्यक है।

(६) ब्रह्मचर्य प्रतिमा—इसका धारक शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करता है। शेष पूर्व प्रतिमाओं के नियम तो अगली प्रतिमा में अनिवार्य है ही। यह उत्कृष्ट छह मासिकी है।

(७) सचित्ताहार त्याग प्रतिमा—वैसे तो सचित्ताहार करना श्रावक के लिए उचित नहीं है, परन्तु प्रत्येक श्रावक सचित्त का त्यागी नहीं होता। इस प्रतिमा का धारक पूर्ण रूप से सचित्त, अर्द्ध-सचित्त या सचित्त-प्रतिबद्ध का त्यागी होता है। यह उत्कृष्ट सात मास तक की जाती है।

(८) आरम्भ त्याग प्रतिमा—इसका धारक स्वयं एक करण एक योग अथवा एक करण तीन योग आदि से आरम्भ करने का त्यागी होता है। आरम्भ करने-कराने वाले को स्वहस्तिकी व आज्ञापनी दोनों क्रियाएँ लगती है, जबकि स्वयं आरम्भ नहीं करने वाले को 'स्वहस्तिकी' क्रिया नहीं लगती। इस प्रतिमा का उत्कृष्ट कालमान आठ मास है।

(९) प्रेष्यारम्भ वर्जन प्रतिमा—इसका धारक आरम्भ करवाने का भी त्यागी होता है। कराने रूप आज्ञापनी क्रिया भी टल जाती है। सामान्य नयानुसार करने, कराने जैसा पाप मात्र अनुमोदना में नहीं होता, क्योंकि उस कार्य में अपना स्वामित्व नहीं होता। इसमें मात्र अनुमोदना खुली रहती है। यह आधाकर्म आहारादि का त्यागी नहीं होता। इसका उत्कृष्ट कालमान नौ मास है।

(१०) उद्दिष्ट भक्त-वर्जन प्रतिमा—इसका धारक अपने लिए बनाए गए आहारादि का सेवन भी नहीं करता। इसमें उस्तरे से या तो पूरा मस्तक मुण्डित होता है, या चोटी के केश रख कर शेष मस्तक। यद्यपि इस प्रतिमा में अपनी ओर से किसी सावद्य विषय में स्वतः कुछ भी नहीं कहा जाता, पर एकबार या बारबार पूछने पर ज्ञात विषय में 'जानता हूँ' तथा अज्ञात विषय में 'नहीं जानता,' इस प्रकार की दो भाषाएँ बोलना कल्पता है। यद्यपि वह विरक्त होता है, तथापि इस कथन से यत्किंचित अनुमोदन तो लगता ही है, क्योंकि जो सर्वथा अनुमोदन-रहित हो, उसे पूछने

पर इन बातों के विषय में कहना भी वर्ज्य है। जैसे कि सर्वथा अनुमोदन-रहित साधु को एक मात्र मोक्षमार्ग के अतिरिक्त राजनैतिक, सामाजिक या आर्थिक आदि किसी भी विषय में एक शब्द का भी उच्चारण करना निषिद्ध है। इसका उत्कृष्ट कालमान दस मास का है।

(११) श्रमणभूत प्रतिमा—इसमें उस्तरे से मस्तक मुण्डित होता है, शक्ति हो तो लोच भी कर सकता है। इसमें अनुमोदन का सर्वथा त्याग होता है। साधु-साध्वी तो जैनेतरों के यहाँ भी गोचरी जाते हैं, पर श्रमणभूत प्रतिमा वाला अपनी जाति वालों के यहाँ से ही आहार-पानी लेता है, क्योंकि 'ये मेरे ज्ञाति वाले हैं'—इस स्नेह-सम्बन्ध का अभाव नहीं हुआ। इस पर भी वह आहार-पानी लेने में साधु के समान विवेकी व विचक्षण होता है। घर में जाने से पूर्व दाल बनी हो, चावल बाद में बने, तो वह दाल ले सकता है, चावल नहीं। इसी प्रकार जो पूर्व निष्पन्न हो, वही वस्तु लेता है। इसमें वह तीन करण तीन योग से पाप का त्याग करता है। किसी के घर भिक्षार्थ जाने पर—'मुझ उपासक प्रतिमा संपन्न को आहार दो'—ऐसा कहना कल्पता है। किसी के पूछने पर वह कह सकता है कि मैं 'प्रतिमाप्रतिपन्न श्रमणोपासक हूँ।' इस प्रतिमा का उत्कृष्ट कालमान ग्यारह मास है।

शंका— क्या प्रथम प्रतिमा के नियम ग्यारहवीं प्रतिमा में भी आवश्यक है?

समाधान—जी हाँ, पहले के सारे नियम अगली प्रतिमा के लिए भी अनिवार्य हैं।

श्री समवायांग सूत्र के ग्यारहवें समवाय में ग्यारह प्रतिमाओं के नाम बताए गए हैं। श्री दशाश्रुतस्कंध सूत्र की छठी दशा में उपासक प्रतिमाओं का स्वरूप विस्तार से बताया गया है।

आनन्दजी ने संथारा किया

तए णं से आणंदे समणोवासए इमेणं एयारूवेणं उरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहियेणं तवोकम्मेणं सुक्के जाव किसे धमणिसंतए जाए। तए णं तस्स आणंदस्स समणोवासगस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्ता जाव धम्मजागरमाणस्स अयं अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—एवं खलु अहं इमेणं जाव धमणिसंतए जाए, तं अत्थि ता मे उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे सद्धाधिइसंवेगे, तं जाव ता मे अत्थि उट्ठाणे सद्धाधिइसंवेगे जाव य मे धम्मायरिए धम्मोवएसए समणे भगवं महावीरे जिणे सुहत्थी विहरइ, ताव ता मे सेयं कल्लं जाव जलंते अपच्छिममारणंतियसंलेहणाझूसणाझूसियस्स भत्तपाणपडि-

याइक्खियस्स कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए, एवं संपेहेइ संपेहित्ता कल्लं जाव अपच्छिम मारणंतिय जाव कालं अणवकंखमाणे विहरइ।

अर्थ—श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं के साथ-साथ उग्र उदार और विपुल मात्रा में, उत्कृष्ट तप-कर्म करने के कारण आनंद श्रमणोपासक शरीर से बहुत कृश रक्त-मांस से रहित एवं शुष्क होगए। हड्डी और त्वचा मिल जाने से अस्थि-पिंजर के समान हो गए। एक-बार रात्रि के चौथे प्रहर में धर्म-जागरणा करते हुए उन्हें विचार आया कि 'जब तक मेरे शरीर में उत्थान, बल, वीर्य, पुरुषार्थ, पराक्रम, श्रद्धा, धृति और संवेग है, तथा मेरे धर्माचार्य-धर्मोपदेशक श्रमण-भगवान् महावीर स्वामी—गंधहस्ती के समान विचर रहे हैं, तब-तक सूर्योदय होने पर मेरे लिए मारणांतिकी संलेखना कर लेना उचित है।' ऐसा विचार कर दूसरे दिन संथारा कर लिया, तथा मृत्यु की चाहना न करते हुए धर्माराधना करने लगे।

आनन्द को अवधिज्ञान

तए णं तस्स आणंदस्स समणोवासगस्स अण्णया कयाइ सुभेणं अज्झवसाणेणं सुभेणं परिणामेणं लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं तदावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ओहिणाणे समुप्पण्णे, पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दे पंच जोयणसइयं खेत्तं जाणइ पासइ, एवं दक्खिणेणं पच्चत्थिमेण य, उत्तरेणं जाव चुल्लहिमवंतं वासहरपव्वयं जाणइ पासइ, उड्ढं जाव सोहम्मं कप्पं जाणइ पासइ, अहे जाव इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए लोलुयच्चुयं णरयं चउरासीइवाससहस्सट्ठिइयं जाणइ पासइ॥

अर्थ—अन्यदा किसी दिन शुभ अध्यवसायों से, शुभ मन-परिणामों से, लेश्याओं की विशुद्धि होने से तथा अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम होने से (रूपी पदार्थों को विषय करने वाला) अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ। उससे वे पूर्व, पश्चिम और दक्षिण दिशा में पाँचसौ-पाँचसौ योजन तक का लवणसमुद्र का क्षेत्र, उत्तर-दिशा में चुल्लहिमवंत वर्षधर पर्वत तक का क्षेत्र, ऊर्ध्व-दिशा में पहला देवलोक तथा अधो-दिशा में प्रथम नरक में चौरासी हजार की स्थिति वाले लोलुयच्चुय नरकावास तक का क्षेत्र जानने-देखने लगे।

गौतम स्वामी का समागम

तेणं काले णं तेणं समए णं समणे भगवं महावीरे समोसरिए, परिसा णिग्गया, जाव पडिगया, तेणं काले णं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई णामं अणगारे गोयमगोत्तेणं सत्तुस्सेहे समचउरंस-संठाणसंठिए वज्जरिसहणारायसंघयणे कणगपुलगणिघसपम्हगोरे उग्गतवे दित्त-तवे तत्ततवे घोरतवे महातवे उराले घोरगुणे घोरतवस्सी घोरबम्भचेरवासी उच्छूढ-सरीरे संखित्तविउलतेउलेसे छट्ठं छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

अर्थ—उस काल उस समय में (जब आनन्दजी का संथारा चल रहा था) श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वाणिज्यग्राम नगर पधारे। परिषद् सेवा में गई। धर्मोपदेश सुन कर लौट गई। तब श्रमण-भगवान् महावीर स्वामी के प्रधान शिष्य इंद्रभूतिजी (गौतम गोत्र के कारण 'गौतम' के नाम से अधिक प्रख्यात थे) सात हाथ ऊंचे, समचतुरस्रसंस्थान वाले, वज्रऋषभनाराच संहनन वाले, कसौटी पर कसे शुद्ध सोने और पद्मपराग के समान गौर-वर्ण के थे। उनका तप-उग्र, दीप्त, (कायरों के लिए लोहे के तपे गोले के समान) तप्त, घोर, महान् और उदार था, हीन सत्त्व वाले उनके गुण सुन कर ही कांपते थे, अतः वे घोर गुणी थे। निरन्तर बेले-बेले का तप करने के कारण वे घोरतपस्वी थे। उनका ब्रह्मचर्य भी बहुत निग्रह प्रधान था। वे शरीर की विभूषा आदि नहीं करते थे, देह-मोहातीत थे। यद्यपि उन्हें विपुल तेजोलेश्या प्राप्त थी, परन्तु उसे वे शरीर में ही संक्षिप्त कर रखते थे, कभी प्रकट करने की इच्छा भी नहीं होती थी। वे निरन्तर बेले-बेले का तप करते हुए अपनी आत्मा को संयम-तप से भावित करते हुए विचरते थे।

तए णं से भगवं गोयमे छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ बिइयाए पोरिसीए झाणं झायइ, तइयाए पोरिसीए अतुरियं अचवलं असंभंते मुहपत्तिं पडिलेहेइ पडिलेहित्ता भायणवत्थाइं पडिलेहेइ पडिलेहित्ता भायणवत्थाइं

पमज्जइ पमज्जित्ता भायणाइंउग्गाहेइ उग्गाहित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए छट्ठक्खमणपारणगंसि वाणियगामे णयरे उच्चणीयमज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्तए।
"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह।"

अर्थ—बेले के पारणे के दिन भगवान् गौतम स्वामी ने प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया, दूसरे प्रहर में ध्यान किया, तीसरे प्रहर में चपलता एवं त्वरा रहित, असंभ्रान्त रीति से मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना की, पात्रों और वस्त्रों की प्रतिलेखना की, पात्रों का प्रमार्जन कर के ग्रहण किया और जहाँ भगवान् महावीर स्वामी विराज रहे थे, वहाँ आकर के वन्दना-नमस्कार कर बोले—'हे भगवन् ! यदि आपकी आज्ञा हो तो वाणिज्य-ग्राम नगर में समुदानिकी भिक्षाचर्या के लिए जाऊँ ?' भगवान् महावीर स्वामी ने फरमाया—'हे देवानुप्रिय ! तुम्हें सुख हो, वैसा करो।'

तए णं गोयमे समणेणं भगवया महावीरेण अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ दूइपलासाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता अतुरियमचवलमसंभंते जुगंतरपरिलोयणाए दिट्ठीए पुरओ ईरियं सोहेमाणे जेणेव वाणियगामे णयरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता वाणियगामे णयरे उच्चणीयमज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडइ।

अर्थ—भगवान् की आज्ञा प्राप्त हो जाने पर गौतम स्वामी द्युतिपलाश उद्यान से निकल कर अत्वरित, अचपल एवं असंभ्रांत गति से चार हाथ प्रमाण आगे का क्षेत्र देखते हुए ईर्यासमिति पूर्वक वाणिज्यग्राम नगर में सामुदानिकी भिक्षा के लिए भ्रमण करने लगे।

तए णं से भगवं गोयमे वाणियगामे णयरे जहा पण्णत्तीए तहा जाव भिक्खायरियाए अडमाणे अहापज्जत्तं भत्तपाणं सम्मं पडिग्गाहेइ पडिग्गाहित्ता वाणियगामाओ पडिणिग्गच्छइ पडिणिग्गच्छित्ता कोल्लायस्स सण्णिवेसस्स अदूरसामंतेणं वीइवयमाणे बहुजणसद्दं णिसामेइ, बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ

एवं भासइ एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ—एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी आणंदे णामं समणोवासए पोसहसालाए अपच्छिम जाव अणवकंखमाणे विहरइ । तए णं तस्स गोयमस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—तं गच्छामि णं आणंदं समणोवासयं पासामि, एवं संपेहेइ संपेहित्ता जेणेव कोल्लाए सण्णिवेसे जेणेव आणंदे समणोवासए जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ ।

अर्थ—भगवती में कहे अनुसार भगवान् गौतम स्वामी ने भिक्षाचर्या के लिए भ्रमण कर आहार-पानी ग्रहण किया तथा लौटते समय कोल्लाक सन्निवेश से न अधिक दूर न अधिक निकट पधारते हुए बहुत-से लोगों से यह बात सुनी कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के अंतेवासी आनंद श्रमणोपासक अपश्चिममारणांतिकी संलेखना कर मृत्यु की चाहना न करते हुए यहाँ रह रहे हैं । यह बात सुन कर गौतमस्वामी ने विचार किया कि मुझे भी आनन्द को देखना चाहिए । तब वे जहाँ पौषधशाला थी, वहाँ आए ।

तए णं से आणंदे समणोवासए भगवं गोयमं एज्जमाणं पासइ पासित्ता हट्ठ जाव हियए, भगवं गोयमं वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—एवं खलु भंते ! अहं इमेणं उरालेणं जाव धमणिसंतए जाए, ण संचाएमि देवाणुप्पियस्स अंतियं पाउब्भवित्ता णं तिक्खुत्तो मुद्धाणेणं पाए अभिवंदित्तए । तुब्भे णं भंते ! इच्छाकारेणं अणभिओएणं इओ चेव एह, जा णं देवाणुप्पियाणं तिक्खुत्तो मुद्धा-णेणं पाएसु वंदामि णमंसामि । तए णं से भगवं गोयमे जेणेव आणंदे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ ॥ सू. १५ ॥

अर्थ—भगवान् गौतम स्वामी को पौषधशाला में पधारते देख कर आनन्द श्रमणो-पासक बहुत प्रसन्न एवं हर्षित हुए, वंदना नमस्कार किया और कहा—'हे भगवन् ! मैं कठोर तपस्या करने के कारण अत्यंत दुर्बल एवं कृश हो गया हूँ । आपके समीप आकर आपश्री के चरण-स्पर्श कर सकूं, ऐसी सामर्थ्य मुझ में नहीं रही । अतएव यदि आप मेरे सन्निकट पधारने की कृपा करें, तो चरण-रज का स्पर्श कर वंदना-नमस्कार करूं ।' तब गौतम स्वामी आनन्द के निकट पधारे ।

क्या सत्य का भी प्रायश्चित्त होता है ?

तए णं से आणंदे समणोवासए भगवओ गोयमस्स तिक्खुत्तो मुद्धाणेणं पाएसु वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—"अत्थि णं भंते ! गिहिणो गिहिमज्झावसंतस्स ओहिणाणे समुप्पज्जइ ?" "हंता अत्थि।" "जइ णं भंते ! गिहिणो जाव समुप्पज्जइ, एवं खलु भंते ! मम वि गिहिणो गिहिमज्झावसंतस्स ओहिणाणे समुप्पण्णे-पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दे पंच जोयण-सयाइं जाव लोलुयच्चुयं णरयं जाणामि पासामि।" तए णं से भगवं गोयमे आणंदं समणोवासयं एवं वयासी—"अत्थि णं आणंदा ! गिहिणो जाव समुप्पज्जइ, णो चेव णं एमहालए, तं णं तुमं आणंदा ! एयस्स ठाणस्स आलोएहि जाव तवोकम्मं पडिवज्जाहि।

अर्थ—गौतम स्वामी के निकट पधारने पर आनन्द श्रमणोपासक ने उनके चरणों में मस्तक लगा कर तीन बार वंदना-नमस्कार कर कहा—"हे भगवन् ! क्या गृहस्थ अवस्था में रहे हुए गृहस्थ को अवधिज्ञान हो सकता है ?" गौतमस्वामी ने उत्तर दिया—"हाँ आनन्द ! हो सकता है।" तब आनन्द ने कहा—"हे भगवन् ! मुझे भी अवधिज्ञान हुआ है, जिससे मैं यहाँ रहा हुआ पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण में लवण-समुद्र के पाँचसौ-पाँचसौ योजन तक का क्षेत्र, उत्तर दिशा में चुल्ल-हिमवंत पर्वत तक का क्षेत्र, ऊर्ध्व-दिशा में प्रथम देवलोक एवं नीची-दिशा में लोलुपच्चुय नरकावास तक का क्षेत्र देख रहा हूँ। तब गौतम स्वामी ने फरमाया—"हे आनंद ! गृहस्थ को अवधिज्ञान तो होता है, परंतु इतना विशाल नहीं हो सकता। अतः तुम आलोचना कर प्रायश्चित्त ग्रहण करो।"

तए णं से आणंदे समणोवासए भगवं गोयमं एवं वयासी—"अत्थि णं भंते ! जिणवयणे संताणं तच्चाणं तहियाणं सब्भूयाणं भावाणं आलोइज्जइ जाव पडिवज्जिज्जइ ?" "णो इणट्ठे समट्ठे।" "जइ णं भंते ! जिणवयणे संताणं जाव भावाणं णो आलोइज्जइ जाव तवोकम्मं णो पडिवज्जिज्जइ तं णं भंते ! तुब्भे चेव एयस्स ठाणस्स आलोएह जाव पडिवज्जह।"

अर्थ— आनन्द श्रमणोपासक ने भगवान् गौतम स्वामी से निवेदन किया— "हे भगवन् ! क्या जिनशासन में सत्य, तथ्य, सद्भूत भावों की भी आलोचना प्रायश्चित्त है? मैंने जैसा देखा है, वैसा ही निवेदन किया है, तो क्या सत्य बात कहने वाले को आलोचना करनी चाहिए ?" भगवान् गौतम स्वामी ने फरमाया—'नहीं, ऐसी बात नहीं है । सत्य-भाषी को आलोचना-प्रायश्चित्त नहीं आता ।" तब आनन्द श्रमणोपासक बोले—"हे भगवन् ! यदि जिनशासन में ऐसी व्यवस्था है, तो आपको इस मृषा-स्थान की आलोचना कर के प्रायश्चित्त लेना चाहिए ।"

तए णं से भगवं गोयमे आणंदेणं समणोवासएणं एवं वुत्ते समाणे संकिए कंखिए विइगिच्छासमावण्णे आणंदस्स अंतियाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता जेणेव दूइपलासे चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते गमणागमणाए पडिक्कमइ पडिक्कमित्ता एसणमणेसणं आलोएइ आलोइत्ता भत्तपाणं पडिदंसेइ पडिदंसित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—"एवं खलु भंते ! अहं तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए तं चेव सव्वं कहेइ जाव तए णं अहं संकिए कंखिए विइ-गिच्छासमावण्णे आणंदस्स समणोवासगस्स अंतियाओ पडिणिक्खमामि पडि-णिक्खमामित्ता जेणेव इहं तेणेव हव्वमागए ।

अर्थ—आनन्द श्रमणोपासक के ये वचन सुन कर गौतमस्वामी को अपने कथन के विषय में शंका, कांक्षा, विचिकित्सा हुई । वे वहाँ से चल कर द्युतिपलाश उद्यान में श्रमण-भगवान् महावीर स्वामी के समीप पधारे । गमनागमन का ईर्यापथिकी प्रतिक्रमण किया और एषणा की आलोचना कर आहार-पानी दिखाया और वंदना-नमस्कार कर कहा— "हे भगवन् ! आपकी आज्ञा से मैं गोचरी गया था, यावत् आनन्दजी से हुआ वार्तालाप कहा ।

"तं णं भंते ! किं आणंदेणं समणोवासएणं तस्स ठाणस्स आलोएयव्वं जाव पडिवज्जेयव्वं उदाहु मए ?" "गोयमा इ ! समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं

वयासी—"गोयमा ! तुमं चेव णं तस्स ठाणस्स आलोएहि जाव पडिवज्जाहि, आणंदं च समणोवासयं एयमट्ठं खामेहि। तए णं से भगवं गोयमे समणस्स भगवओ महावीरस्स "तहत्ति" एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ पडिसुणित्ता तस्स ठाणस्स आलोएइ जाव पडिवज्जइ, आणंदं च समणोवासयं एयमट्ठं खामेइ। तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥ सू. १७ ॥

अर्थ—गौतमस्वामी ने कहा—'हे भगवन् ! आनन्द श्रमणोपासक इस विषय में आलोचना-प्रायश्चित्त के भागी हैं, अथवा मैं ?' तब भगवान् महावीर स्वामी ने गौतमस्वामी से फरमाया—"हे गौतम ! आनन्द का कथन यथार्थ है। तुम उस कथन की आलोचना कर प्रायश्चित्त करो तथा आनन्द श्रमणोपासक से क्षमापना करो।" गौतमस्वामी ने भगवान् का कथन विनयपूर्वक श्रवण कर स्वीकार किया (और वे पुनः कोल्लाक सन्निवेश गए) तथा आनन्द श्रमणोपासक से अपने कथन के लिए क्षमा याचना की। अन्यदा कभी भगवान् बाहर जनपद में विचरने लगे।

विवेचन—यह उपासकदशांग सूत्र भगवान् सुधर्मास्वामी की रचना है। उन्होंने इसमें गौतमस्वामी का यह प्रसंग क्यों दिया ? इस प्रश्न के उत्तर में ज्ञानी फरमाते हैं कि तीर्थंकरों से तो कोई भूल होती ही नहीं है। उनके बाद गणधरों में गौतमस्वामी का अग्र स्थान था। भगवान के प्रथम-प्रधान शिष्य द्वारा एक श्रावक से क्षमा-याचना करना साधारण बात नहीं है। इस दृष्टान्त से यह सिद्धि होती है कि चाहे कोई कितना ही बड़ा क्यों न हो तथा अगला व्यक्ति कितना ही छोटा क्यों न हो, भूल को भूल मानना यही सम्यक्त्व की भूमिका एवं सिद्धि का प्रथम सोपान है। 'मैं बड़ा हूं, छोटे के सामने मेरी नम्रता क्यों ?' यह भावना विकास की अवरोधक है।

प्रश्न—क्या गौतमस्वामी चार ज्ञान चौदह पूर्वधर नहीं थे ? यदि थे तो ऐसी कथन-स्खलना कैसे सम्भव है ?

समाधान—आनन्दजी के क्षमा याचना प्रसंग से पूर्व ही गौतमस्वामी चार ज्ञान एवं चौदह पूर्व धारक थे। दशवैकालिक अ. ८ गाथा ५० में कहा गया है—

आयारपण्णत्तिधरं, दिट्ठिवायमहिज्जगं।
वायविक्खलियं णच्चा, ण तं उवहसे मुणी ॥

"आचार-प्रज्ञप्ति के ज्ञाता और दृष्टिवाद के अध्येता भी बोलते समय प्रमादवश वचन से स्खलित हो जाय, तो उनके अशुद्ध वचन को जान कर साधु उन महापुरुषों का उपहास न करे।"

अत: गौतमस्वामी का उक्त कथन चार ज्ञान चौदह पूर्व में बाधक नहीं है। सत्य बोलने के भाव रखते हुए भी उपयोग नहीं पहुंचने से असत्य भाषण हो जाय तो शास्त्रकार उन्हें आराधक मानते हैं, विराधक नहीं।

गौतमस्वामी ने पारणा भी बाद में किया, पहले क्षमा-याचना की। आगमों के ये देदीप्यमान ज्वलंत उदाहरण 'भूल को भूल स्वीकार करने की' आदर्श प्रेरणा देते हैं।

तए णं से आणंदे समणोवासए बहूहिं सीलव्वएहिं जाव अप्पाणं भावेत्ता वीसं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणित्ता एक्कारस य उवासगपडिमाओ सम्मं काएणं फासित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडिंसगस्स महाविमाणस्स उत्तरपुरच्छिमेणं अरुणे विमाणे देवत्ताए उववण्णे। तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, तत्थ णं आणंदस्स वि देवस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। आणंदे भंते! देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिइ? कहिं उववज्जिहिइ? गोयमा! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ। णिक्खेवो॥ सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं पढमं अज्झयणं समत्तं॥ सू. १७॥

अर्थ— आनन्द श्रमणोपासक शीलव्रत आदि बहुत-से धार्मिक अनुष्ठानों से आत्मा को भावित करते हुए बीस वर्ष तक श्रावक-पर्याय का पालन किया, उपासक की ग्यारह प्रतिमाओं का सम्यक् पालन किया, मासिकी संलेखना से शरीर व कषायों को क्षीण कर साठ भक्त तक अनशन का त्याग कर (सम्पूर्ण जीवन में लगे) दोषों की आलोचना कर योग्य प्रायश्चित्त-प्रतिक्रमण किया तथा आत्म समाधियुक्त काल कर के प्रथम देवलोक 'सौधर्म कल्प' के सौधर्मावतंसक महाविमान के ईशानकोण में स्थित अरुण नामक विमान में देव रूप में उत्पन्न हुए। वहाँ कई देवों की स्थिति चार पल्योपम की कही गई है, तदनुसार आनन्द देव की स्थिति भी चार पल्योपम की है। गौतमस्वामी ने पूछा—'हे भगवन्! आनन्द देव चार पल्योपम की स्थिति पूरी होने पर देवभव का क्षय कर के आयुष्य पूरा होने पर कहाँ जन्म लेंगे, कहाँ उत्पन्न होंगे?' भगवान् ने फरमाया—"हे

गौतम ! वहाँ से आयु, स्थिति एवं भव का क्षय कर महाविदेह-क्षेत्र में जन्म ले कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त यावत् सभी दुःखों का अन्त करेंगे । ऐसा सर्वज्ञ भगवन्त फरमाते हैं ।

॥ श्री उपासकदशांग सूत्र का प्रथम अध्ययन सम्पूर्ण ॥

विवेचन—श्रमणोपासक आनन्दजी की सत्यशीलता, निर्भीकता, स्पष्टता और सत्य प्रकट करने का साहस अनुकरणीय है । उन्हें जितना अवधिज्ञान हुआ, उतना गौतमस्वामी से निवेदन किया । अनुपयोगवश गौतमस्वामी ने उन्हें प्रायश्चित्त का फरमाया तो उन्होंने यह विचार नहीं किया कि 'ये भगवान् के प्रथम गणधर, प्रधान शिष्य, तथा मुख्य अंतेवासी हैं । मैं इनका कहा मान कर प्रायश्चित्त ले लूँ । कदाचित् मेरी बात ठीक न हो । क्या ये झूठ कह सकते हैं ?' उन्होंने निर्भीकता पूर्वक स्पष्ट निवेदन किया कि 'जिनशासन की यह रीति-नीति नहीं रही । यहाँ सच्चे को सच्चा एवं निर्दोष को निर्दोष माना गया है । मैंने तो जैसा देखा, वैसा निवेदन किया है ।'

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

द्वितीय अध्ययन

श्रमणोपासक कामदेव

जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते दोच्चस्स णं भंते! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते? एवं खलु जंबू! तेणं काले णं तेणं समएणं चंपा णामं णयरी होत्था, पुण्णभद्दे चेइए, जियसत्तू राया, कामदेवे गाहावई, भद्दा भारिया। छ हिरण्णकोडीओ णिहाणपउत्ताओ, छ वुड्ढिपउत्ताओ, छ पवित्थर-पउत्ताओ, छ वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं। समोसरणं। जहा आणंदो तहा णिग्गओ तहेव सावयधम्मं पडिवज्जइ सा चेव वत्तव्वया जाव जेट्ठपुत्तं मित्तणाइं आपुच्छित्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता जहा आणंदो जाव समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।१८।

अर्थ—जम्बूस्वामी पृच्छा करते हैं—'हे भगवन्! भगवान् महावीर स्वामी ने उपासकदशांग के प्रथम अध्ययन के जो भाव फरमाए, वे मैंने आपके मुखारविंद से सुने। दूसरे अध्ययन में भगवान् ने क्या भाव फरमाए हैं? आर्य सुधर्मास्वामी ने फरमाया—'हे जम्बू! इस अवसर्पिणीकाल के चौथे आरे में जब भगवान् महावीर स्वामी विचर रहे थे, उस समय चम्पा नगरी थी, पूर्णभद्र उद्यान था, जितशत्रु राजा राज्य करते थे, 'कामदेव' नामक गाथापति थे, जिनकी पत्नी का नाम 'भद्रा' था। कामदेव के पास छ

करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं जितना धन निधान के रूप में सुरक्षित था, इतना ही व्यापार में तथा इतना ही घर-बिखरी के रूप में फैला हुआ था। गायों के छह व्रज थे। एक व्रज में दस हजार गाएँ होती हैं। भगवान् महावीर स्वामी चम्पा पधारे। परिषद धर्म सुनने के लिए गई। आनन्द के समान कामदेव भी गए, यावत् श्रावक व्रत ग्रहण किए। कालान्तर में ज्येष्ठ-पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंप कर पौषधशाला में भगवान् द्वारा बताई गई धर्म-प्रज्ञप्ति स्वीकार कर धर्म साधना करने लगे।

देव उपसर्ग—पिशाच रूप

तए णं तस्स कामदेवस्स समणोवासगस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि एगे देवे मायी-मिच्छद्दिट्ठी अंतियं पाउब्भूए तए णं से देवे एगं महं पिसायरूवं विउव्वइ, तस्स णं देवस्स पिसायरूवस्स इमे एयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते।

अर्थ—उस कामदेव श्रमणोपासक के पास मध्य-रात्रि के समय एक मायीमिथ्या-दृष्टि देव आया। उसने एक विशाल पिशाच रूप की विकुर्वणा की। उस पिशाच रूप का वर्णन इस प्रकार है;—

सीसं से गोकिलंजसंठाणसंठियं सालिभसेल्लसरिसा से केसा कविलतेएणं दिप्पमाणा, महल्ल उट्टियाकभल्लसंठाणसंठियं णिडालं मुगुंसपुंछं व तस्स भुमगाओ फुग्गफुग्गाओ, विगय-बीभच्छदंसणाओ सीसघडिविणिग्गयाइं अच्छीणि विगयबीभच्छ दंसणाइं, कण्णा जह सुप्पकत्तरं चेव विगयबीभच्छदंसणिज्जा, उरब्भपुडसण्णिभा से णासा, झुसिरा जमलचुल्लीसंठाणसंठिया दोऽवि तस्स णासा-पुडया, घोडयपुंछं व तस्स मंसूइं कविलकविलाइं विगयबीभच्छदंसणाइं।

अर्थ—उस पिशाच का मस्तक गोकिलंज—गाय आदि को बांटा खिलाने के बड़े टोकरे को औंधा रखने पर जो आकार बनता है, उसके समान था। उसके केश चावल के तुस के वर्ण वाले (पिंगल वर्ण वाले) चमकिले थे। ललाट का आकार ऐसा था मानो बड़े घड़े का

नीचे का हिस्सा हो। गिलहरी की पूंछ के समान परस्पर बिना मिली भयंकर भौंहें थी। दोनों आंखें घड़े के मुख जैसी विशाल तथा डरावनी थी। कानों का आकार सूप के टुकड़ों के समान था। भेड़ के नाक के समान या 'हुरभ' नामक वाद्य के समान चपटी नाक थी। नासिका के दोनों छिद्र बड़ी-बड़ी मिली हुई भट्टियों के समान लगते थे। दाढ़ी-मूंछ के बाल घोड़े की पूंछ के समान कठोर थे (गाल क्षीण मांस वाले तथा ऊंची निकली हुई हड्डी से कुबड़े के समान थे—पाठान्तर)।

उट्ठा उट्टस्स चेव लंबा, फालसरिसा से दंता, जिब्भा जहा सुप्पकत्तरं चेव विगयबीभच्छदंसणिज्जा, हलकुद्दालसंठिया से हणुया, गल्लकडिल्लं च तस्स खड्डं फुट्टं कविलं फरुसं महल्लं, मुइंगाकारोवमे से खंधे, पुरवरकवाडोवमे से वच्छे, कोट्ठियासंठाणसंठिया दोऽवि तस्स बाहा, निसापाहाणसंठाणसंठिया दोऽवि तस्स अग्गहत्था, निसालोढसंठाणसंठियाओ हत्थेसु अंगुलीओ।

अर्थ—ऊंट के समान लम्बे होठ थे। लोहे की कुश या फावड़े के समान लम्बे-लम्बे दांत थे। सूप के टुकड़े के समान भयंकर लम्बी जीभ थी (मुख के भीतर ऐसी लालिमा थी, मानो हिंगुल की खान हो—पाठान्तर) हल की लकड़ी के समान बहुत टेढ़ी तथा लम्बी ठोडी थी, लोहे के कड़ाह के समान मध्य में खड्डे वाले, कुत्ते के समान फटे हुए बड़े कर्कश गाल थे, स्कंध फूटे मृदंग के समान थे, नगर के द्वार (किवाड़) जैसी विशाल छाती थी, धान्य भरने की मिट्टी की कोठी के समान विशाल भुजाएं थीं। मूंग आदि पीसने की शिला के समान विशाल एवं स्थूल हाथ थे। लोढ़ी के समान हाथों की अंगुलियां थीं।

सिप्पिपुडगसंठिया से णक्खा, ण्हावियपसेवओ व्व उरंसि लंबंति दोऽवि तस्स थणया, पोट्टं अयकोट्ठओ व्व वट्टं, पाणकलंदसरिसा से णाही, सिक्कग-संठाणसंठिया से नेत्ते, किण्णपुडसंठाणसंठिया दोऽवि तस्स वसणा, जमलकोट्ठिया-संठाणसंठिया दोऽवि तस्स ऊरू।

अर्थ—सीप-संपुट या किले के बुर्ज के समान तीखे और लम्बे नाखून थे। नाई के

उस्तरा आदि रखने की चमड़े की थैली के समान छाती में लटकते लम्बे स्तन थे। लोहे की कोठी जैसा गोल पेट था, पानी की कुण्डी की भाँति गहरी नाभि थी, (भग्न कटि वाले विरूप तथा टेढ़े दोनों नितम्ब थे—पाठान्तर) छींके के समान लटकता पुरुषचिन्ह था, चावल आदि भरने की गोणी के समान अण्डकोष थे, धान भरने की कोठी के समान लम्बी जंघाएँ थीं।

अज्जुणगुट्ठं व तस्स जाणूइं कुडिलकुडिलाइं विगयबीभच्छदंसणाइं जंघाओ कक्खडीओ लोमेहिं उवचियाओ, अहरीलोढसंठाणसंठिया दोऽवि तस्स पाया, अहरीलोढसंठाणसंठियाओ पाएसु अंगुलीओ सिप्पिपुडसंठिया से णक्खा लडह-मडहजाणुए विगयभग्गभुग्गभुमए।

अर्थ—अर्जुन वृक्ष की गाँठ के समान कुटिल एवं बहुत बीभत्स घुटने थे। घुटने के नीचे का भाग मांस-रहित तथा कठोर रोमावली वाला था। पाँव मसाला पीसने की शिला के समान थे। लोढ़ी के समान अंगुलियाँ थीं, सीप-संपुट के समान नाखून थे, गाड़ी के पिछले भाग में लटकते काष्ठ के समान छोटे तथा बेडोल घुटने थे, भृकुटी बड़ी भयावनी और कठोर थी (विकराल टेढ़ी, कृष्ण मेघ के समान काली भौंह थी, लम्बे होठों से दाँत बाहर निकले हुए थे—पाठान्तर)।

अवदालियवयणविवरणिल्लालियग्गजीहे सरडकयमालियाए उंदुरमाला-परिणद्धसुकयचिंधे णउलकयकण्णपूरे सप्पकयवेगच्छे।

अर्थ—गुफा के समान मुख से जीभ का अग्र भाग बाहर निकला हुआ बड़ा भयंकर दिखाई देता था। गिरगिट की मालाएँ पहनी हुई थी। चूहों की मालाएँ भी पहन रखी थी। कानों में कुण्डल के स्थान पर नेवले लटक रहे थे। दुपट्टे के स्थान पर सर्प लपेटे हुए थे, (चूहे को शिर का आभूषण, बिच्छू की मुद्रिकाएँ, सर्प का यज्ञोपवीत पहना हुआ था। मुख, नाक तथा नख सहित व्याघ्रचर्म पहना हुआ था। शरीर पर मांस और रुधिर का लेप किया गया था।

अप्फोडंते अभिगज्जंते भीममुक्कट्टहासे णाणाविहपंचवण्णेहिं लोमेहिं उवचिए एगं महं णीलुप्पलगवलगुलियअयसिकुसुमप्पगासं असिं खुरधारं गहाय जेणेव पोसहसाला जेणेव कामदेवे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसि-मिसीयमाणे कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी—

अर्थ—इस प्रकार भयंकर रूप बना कर भीम, उत्कृष्ट अट्टहास कर के करतल से स्फोटन करता हुआ, मेघ के समान गर्जना करता हुआ, पांचों रंगों वाले लोमों सहित, नील कमल के समान, भैंस के सींग के समान, अलसी के कुसुम तथा नील के समान प्रभा वाली तीक्ष्ण धार वाली तलवार हाथ में ग्रहण कर के जहाँ कामदेव श्रमणोपासक की पौषधशाला थी, वहाँ वह देव आया और भयंकर क्रोधाभिभूत हो कर मिसमिसाहट करता हुआ कहने लगा।

हं भो कामदेवा ! समणोवासया अपत्थियपत्थिया दुरंतपंतलक्खणा हीणपुण्णचाउद्दसिया हिरिसिरिधिइ-कित्तिपरिवज्जिया ! धम्मकामया पुण्णकामया, सग्गकामया मोक्खकामया धम्मकंखिया पुण्णकंखिया सग्गकंखिया मोक्खकंखिया धम्मपिवासिया पुण्णपिवासिया सग्गपिवासिया मोक्खपिवासिया ! णो खलु कप्पइ तव देवाणुप्पिया ! जं सीलाइं वयाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं चालित्तए वा खुभित्तए वा खंडित्तए वा भंजित्तए वा उज्झित्तए वा परिचइत्तए वा, तं जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं जाव पोसहोववासाइं ण छड्डेसि ण भंजेसि तो ते अहं अज्ज इमेणं णीलुप्पल जाव असिणा खंडाखंडिं करेमि, जहा णं तुमं देवाणुप्पिया अट्टदुहट्टवसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि। तए णं से कामदेवे समणोवासए तेणं देवेणं पिसायरूवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए अतत्थे अणुव्विग्गे अक्खुभिए अचलिए असंभंते तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ ॥ सू. १९ ॥

अर्थ—"अरे हे कामदेव श्रमणोपासक ! जिसकी कोई चाहना नहीं करता उस मृत्यु की चाहना करने वाले ! दुष्ट एवं हीन लक्षणों वाले ! हीन चतुर्दशी को जन्मे ! लज्जा, लक्ष्मी, धैर्य और कीर्ति से रहित। धर्म, पुण्य, स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करने की

कामना आकांक्षा वाले, तीव्र इच्छा युक्त पिपासु, हे देवानुप्रिय ! तुझे धारण किए शील-व्रत, अणुव्रत, गुणव्रत तथा पौषधोपवास आदि श्रावक व्रतों से विचलित होना, क्षुभित होना, देश रूप से खण्डना करना, भंग करना, उपेक्षापूर्वक त्याग देना, पूर्णरूप से परित्याग कर देना नहीं कल्पता है । परन्तु यदि आज तू इन व्रतों से विचलित नहीं होगा, यावत् परित्याग नहीं करेगा तो इस नीलकमल जैसी तीक्ष्ण तलवार से तेरे खण्ड-खण्ड कर दूंगा । जिससे तू आर्त्त-ध्यान युक्त होकर अकाल-मृत्यु को प्राप्त होगा ।"

कामदेव श्रमणोपासक उस पिशाच रूपधारी देव के ये वचन सुन कर भयभीत नहीं हुए, त्रास को प्राप्त नहीं हुए, उद्विग्न नहीं हुए, क्षुभित नहीं हुए, शुभ परिणामों से चलित नहीं हुए और कायिक चेष्टाओं से भी संभ्रान्त नहीं हुए, किन्तु शान्तिपूर्वक धर्मध्यान करते रहे ।

तए णं से देवे पिसायरूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं जाव धम्मज्झाणोवगयं विहरमाणं पासइ पासित्ता दोच्चंपि तच्चंपि कामदेवं एवं वयासी— "हं भो कामदेवा ! समणोवासया अपत्थियपत्थिया जइ णं तुमं अज्ज जाव ववरोविज्जसि," तए णं से कामदेवे समणोवासए तेणं देवेणं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव धम्मज्झाणोवगए विहरइ । तए णं से देवे पिसायरूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं जाव विहरमाणं पासइ पासित्ता आसुरत्ते तिवलियं भिउडिं णिडाले साहट्टु कामदेवं समणोवासयं णीलुप्पल जाव असिणा खंडाखंडिं करेइ । तए णं से कामदेवे समणोवासए तं उज्जलं जाव दुरहियासं वेयणं सम्मं सहइ जाव अहियासेइ ॥ सू. २० ॥

अर्थ—जब उस पिशाच रूपधारी देव ने कामदेव श्रमणोपासक को निर्भीक यावत् धर्मध्यान ध्याते हुए देखा, तो दूसरी बार तीसरी बार भी उपरोक्त वचन कहे, कि "हे अप्रार्थितप्रार्थी ! यावत् तेरे टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा ।" तब भी जब वे तनिक भी भयभीत नहीं हुए, तो उसके ललाट में तीन सल बन गए । वह अत्यंत कुपित हुआ और अपने नील-कमल के समान उस तीक्ष्ण धार वाले खड्ग से शरीर के टुकड़े टुकड़े कर दिए । इससे

कामदेव को अत्यन्त भयंकर वेदना हुई, जो दुसह्य, कर्कश, कठोर यावत् असह्य थी। परंतु कामदेव धर्मध्यान से विचलित नहीं हुए और उस वेदना को समभाव से सहते रहे।

हस्ती रूप से घोर उपसर्ग

तए णं से देवे पिसायरूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं जाव विहरमाणं पासइ पासित्ता जाहे णो संचाएइ कामदेवं समणोवासयं णिग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा ताहे संते तंते परितंते सणियं सणियं पच्चोसक्कइ पच्चोसक्कित्ता पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता दिव्वं पिसायरूवं विप्पजहइ विप्पजहित्ता एगं महं दिव्वं हत्थि रूवं विउव्वइ सत्तंगपइट्ठियं सम्मं संठियं सुजायं पुरओ उदग्गं पिट्ठओ वराहं अयाकुच्छिं अलंब-कुच्छिं पलंबलंबोदराधरकरं अब्भुग्गयमउलमल्लियाविमलधवलदंतं कंचणकोसी-पविट्ठदंतं आणामियचावललियसंविल्लियग्गसोंडं कुम्मपडिपुण्णचलणं वीसइ-णक्खं अल्लीणपमाणजुत्तपुच्छं मत्तं मेहमिव गुलगुलेंतं मणपवणजइणवेगं दिव्वं हत्थिरूवं विउव्वइ विउव्वित्ता जेणेव पोसहसाला जेणेव कामदेवे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी।

अर्थ—उस पिशाच रूपधारी देव ने कामदेव को भय-रहित यावत् धर्मध्यान करते देखा। जब वह उन्हें निर्ग्रंथ-प्रवचन से चलित, क्षुभित और विपरिणामित नहीं कर सका, तो वह लज्जा और ग्लानि से थक कर शनैः शनैः पौषधशाला से बाहर निकला। उसने पिशाच रूप त्याग कर एक महान् दिव्य हाथी का रूप बनाया। चार पाँव, सूँड, पूँछ और लिंग ये सातों अंग भूमि का स्पर्श करते थे, इस प्रकार वह हाथी सप्तमांग प्रतिष्ठित था। अंगोपांग सुन्दर और प्रमाणोपेत थे, आगे की ओर मस्तक ऊँचा था, पृष्ठ भाग सूअर के समान पुष्ट था, उसकी कुक्षि बकरी के समान अलंब थी, गजानन के समान होठ लम्बे और लटक रहे थे, दाँत मल्लिका (नवीन विकसित बेला) के फूल के समान स्वच्छ श्वेत, तथा स्वर्ण की चूड़ियों वाले थे, कुछ नमाए हुए धनुष के समान चपल सूँड का अग्रभाग था, कछुए के समान संकुचित चरण थे, बीसों नाखून थे, पूँछ भी प्रमाणोपेत थी, श्रावण के बादलों के

समान गम्भीर गर्जना करता हुआ मन एवं पवन के समान शीघ्र-गति युक्त हाथी का रूप बना कर कामदेव श्रमणोपासक के समक्ष आया और कामदेव श्रमणोपासक से कहने लगा; —

"हं भो कामदेवा! समणोवासया तहेव भणइ जाव न भंजेसि तो ते अज्ज अहं सोण्डाए गिण्हामि, गिण्हामित्ता पोसहसालाओ णीणेमि, णीणेमित्ता उड्ढं वेहासं उव्विहामि, उव्विहामित्ता तिक्खेहिं दंतमूसलेहिं पडिच्छामि, पडिच्छामित्ता अहे धरणितलंसि तिक्खुत्तो पाएसु लोलेमि जहा णं तुमं अट्टदुहट्टवसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।" तए णं से कामदेवे समणोवासए तेणं देवेणं हत्थिरूवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरइ। तए णं से देवे हत्थि रूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं जाव विहरमाणं पासइ, पासित्ता दोच्चंपि तच्चंपि कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी—हं भो कामदेवा! तहेव जाव सोऽवि विहरइ। तए णं से देवे हत्थि-रूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं जाव विहरमाणं पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसायमाणे कामदेवं समणोवासयं सोण्डाए गिण्हइ, गिण्हित्ता उड्ढं वेहासं उव्विहइ उव्विहित्ता तिक्खेहिं दंतमूसलेहिं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता अहे धरणितलंसि तिक्खुत्तो पाएसु लोलेइ। तए णं से कामदेवे समणो-वासए तं उज्जलं जाव अहियासेइ ॥सू. २१॥

अर्थ—'हे कामदेव! यदि तू श्रावक-व्रतों का भंग नहीं करेगा, तो मैं तुझे सूंड से पकड़ कर, पौषधशाला से बाहर ले जाऊँगा और आकाश में ऊंचा फेंक दूंगा तथा नीचे गिरते समय मेरे तीक्ष्ण दांतों पर झेल कर नीचे भूमि पर गिरा दूंगा, तथा तीन बार पांवों तले कुचलूंगा। जिससे तू आर्तध्यान करता हुआ अकाल में मर जायेगा।' ये वचन सुन कर भी कामदेव श्रमणोपासक को तनिक भी भय नहीं हुआ, और पूर्ववत् धर्मध्यान करते रहे। उपरोक्त वचन दो-तीन बार कहे, तब भी कामदेव को धर्मध्यान ध्याते अविचल देखा, तो देव ने कुपित हो कर अपने हाथी रूप से कामदेव को सूंड द्वारा ग्रहण कर पौषधशाला से बाहर लाया और आकाश में ऊंचा उछाला, और गिरते हुए अपने तीक्ष्ण दांतों पर झेला, तथा भूमि पर पटक कर तीन बार पांवों तले कुचला। इससे कामदेवजी को पूर्ववत् असह्य

वेदना हुई, परन्तु कामदेव ने वह वेदना भी समभाव से सहन की और धर्मध्यान से लेश-मात्र भी नहीं डिगे।

देव उपसर्ग--सर्प रूप

तए णं से देवे हत्थिरूवे कामदेवं समणोवासयं जाहे णो संचाएइ जाव सणियं सणियं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता दिव्वं हत्थिरूवं विप्पजहइ, विप्पजहित्ता एगं महं दिव्वं सप्परूवं विउव्वइ—उग्गविसं चंडविसं घोरविसं महाकायं मसीमूसाकालगं णयणविसरोसपुण्णं अंजणपुंजणिगरप्पगासं रत्तच्छं लोहियलोयणं जमलजुयलचंचलजीहं धरणीयलवेणिभूयं उक्कडफुडकुडिलजडिलकक्कसवियडफडाडोवकरणदच्छं लोहागरधम्ममाणधमधमेंतघोसं अणागलियतिव्वचंडरोसं सप्परूवं विउव्वइ, विउव्वित्ता जेणेव पोसहसाला जेणेव कामदेवे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी।

अर्थ—हाथी के रूप से जब देव कामदेव को धर्म से न डिगा सका, तो शनैःशनैः पौषधशाला से बाहर निकला और हस्ती का रूप त्याग कर एक महान् दिव्य सर्प रूप की विकुर्वणा की। वह सर्प उग्र विष वाला, अल्प समय में ही शरीर में व्याप्त हो जाय ऐसे चण्ड (रौद्र) विष वाला, शीघ्र ही मृत्यु का हेतु होने से घोर विषैला, बड़े आकार वाला, स्याही एवं मूस (धातु गलाने का पात्र) के समान काला, दृष्टि पड़ते ही प्राणी भस्म हो जाय ऐसा दृष्टिविष, जिसकी आँखें रोष से भरी थी, काजल के ढेर के समान प्रभा वाला, जिसकी आँखें लालिमायुक्त क्रोध वाली थी, दोनों जीभें चंचल तथा लपलपाती थी, अत्यन्त लम्बा तथा कृष्णवर्ण वाला होने से धरती की वेणी (काली चोटी) के समान दृष्टिगत होता था, अन्य का पराभव करने में उत्कट, चाह एवं स्वभाव से अत्यंत कुटिल, जटिल, निष्ठुर, फण का घटाटोप करने में दक्ष, लुहार की धौंकनी के समान धमधमायमान शब्द करता हुआ, फुत्कार करता हुआ, जिसका तीव्र क्रोध रोका जाना संभव नहीं, ऐसा भयंकर सर्प रूप बना कर

कामदेव श्रमणोपासक के निकट आया और यों कहने लगा;—

"हं भो कामदेवा समणोवासया ! जाव ण भंजेसि तो ते अज्जेव अहं सर-सरस्स कायं दुरुहामि, दुरुहामित्ता पच्छिमेणं भाएणं तिक्खुत्तो गीवं वेढेमि, वेढित्ता तिक्खाहिं विसपरिगयाहिं दाढाहिं उरंसि चेव निकुट्टेमि जहाणं तुमं अट्टदुहट्टवसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि। तए णं से कामदेवे समणो-वासए तेणं देवेणं सप्परूवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरइ। सोऽवि दोच्चंपि तच्चंपि भणइ, कामदेवोऽवि जाव विहरइ। तए णं से देवे सप्परूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं जाव पासइ, पसित्ता आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे कामदेवस्स समणोवासयस्स सरसरस्स कायं दुरूहइ दुरूहित्ता पच्छिमभायेणं तिक्खुत्तो गीवं वेढेइ, वेढित्ता तिक्खाहिं विसपरिगयाहिं दाढाहिं उरंसि चेव णिकुट्टेइ। तए णं से कामदेवे समणोवासए तं उज्जलं जाव अहियासेइ।

अर्थ—हे कामदेव ! यदि तू श्रावक-व्रतों का भंग नहीं करेगा, तो मैं अभी सर-सराहट करता हुआ तेरे शरीर पर चढ़ जाऊँगा, पूंछ से तेरी गर्दन पर तीन आँटे लगा कर लिपट जाऊँगा तथा तीक्ष्ण विषैली दाढ़ाओं से तेरे हृदय पर डसूंगा, जिससे तू आर्त्तध्यान करता हुआ अकाल में ही मर जायेगा। देव वचन सुन कर भी जब कामदेव डरे नहीं, तो देव ने दो-तीन बार उपरोक्त वचन कहे, तब भी मन-परिणामों में चलायमान नहीं हुए, तब सर्परूपधारी देव शीघ्र ही अत्यन्त कुपित हुआ और सरसराहट करता हुआ कामदेव पर चढ़ गया। उनकी गर्दन को अपने तीन दृढ़ आँटे लगा कर तीक्ष्ण विषपूर्ण दाढ़ाओं से हृदय पर डसा, जिससे कामदेव को अत्यन्त भयंकर वेदना हुई। इस उग्र वेदना को उन्होंने समभाव से सहन किया, परन्तु धर्मध्यान से लेशमात्र भी चलित नहीं हुए।

तए णं से देवे सप्परूवे कामदेवं समणोवासगं अभीयं जाव पासइ, पासित्ता जाहे णो संचाएइ कामदेवं समणोवासगं णिग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा ताहे संते तंते परितंते सणियं सणियं पच्चोसक्कइ पच्चोसक्कित्ता पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता दिव्वं सप्परूवं

विप्पजहइ, विप्पजहित्ता एगं महं दिव्वं देवरूवं विउव्वइ, हारविराइयवच्छं जाव दस दिसाओ उज्जोवेमाणं पभासेमाणं पासाइयं दरिसणिज्जं अभिरूवं पडिरूवं दिव्वं देवरूवं विउव्वइ विउव्वित्ता कामदेवस्स समणोवासयस्स पोसह-सालं अणुप्पविसइ अणुप्पविसित्ता अंतलिक्खपडिवण्णे सखिंखिणियाइं पंच-वण्णाइं वत्थाइं पवरपरिहिए कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी—

अर्थ—(यक्ष, हाथी और सर्प रूप तीन प्रकार से उपसर्ग देने के बाद भी) जब सर्प रूपधारी देव ने कामदेव श्रमणोपासक को निर्भय यावत् धर्मध्यान में लीन देखा, और निर्ग्रंथ-प्रवचन से लेश-मात्र भी चलित न कर सका, क्षुभित नहीं कर सका, विपरिणामित नहीं कर सका, तब थक कर त्रास को प्राप्त हुआ, और क्लांत होकर शनैः शनैः पौषधशाला से बाहर निकला। उसने सर्प का रूप त्याग कर देव रूप की विकुर्वणा की। उस देव का वक्षस्थल मालाओं से सुशोभित था, आभूषणों तथा शरीर की कांति से दशों-दिशाएँ प्रकाशित हो रही थी, वह देव दर्शनीय, बार-बार दर्शनीय और रूप कांति में अनुपम था। ऐसी विकुर्वणा करके वह कामदेव श्रमणोपासक की पौषधशाला में आया। अंतरिक्ष में घुंघरु सहित श्रेष्ठ पाँचों रंगों के प्रधान वस्त्र धारण किए हुए उस देव ने कामदेव से इस प्रकार कहा;—

कामदेव तुम धन्य हो—इन्द्र से प्रशंसित

"हं भो कामदेवा समणोवासया! धण्णेसि णं तुमं देवाणुप्पिया! सपुण्णे कयत्थे कयलक्खणे सुलद्धे णं तव देवाणुप्पिया! माणुस्सए जम्मजीवियफले, जस्स णं तव णिग्गंथे पावयणे इमेयारूवा पडिवत्ती लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया। एवं खलु देवाणुप्पिया! सक्के देविंदे देवराया जाव सक्कंसि सीहासणंसि चउ-रासीईए सामाणियसाहस्सीणं जाव अण्णेसिं च बहूणं देवाण य देवीण य मज्झगए एवमाइक्खइ, एवं भासइ, एवं पण्णवेइ, एवं परूवेइ—'एवं खलु देवाणुप्पिया! जंबूद्दीवे दीवे भारहे वासे चंपाए णयरीए कामदेवे समणोवासए पोसहसालाए पोस-हियबंभयारी दब्भसंथारोवगए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। णो खलु से सक्का केणइ देवेण वा दाणवेण वा जाव

गंधव्वेणं णिग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा।

अर्थ—हे कामदेव श्रमणोपासक ! आप धन्य हैं, हे देवानुप्रिय ! आप पुण्यशाली हैं, कृतार्थ हैं, आपके शारीरिक लक्षण शुभ हैं, मनुष्य-जन्म और जीवन प्राप्त कर आपने सफल किया है, आप महान् पुण्यात्मा हैं। आपको निर्ग्रंथ-प्रवचन में पूर्ण दृढ़ता, निष्ठा, श्रद्धा एवं रुचि मिली, प्राप्त हुई, भली प्रकार स्थित हुई है।

हे देवानुप्रिय ! एकबार सौधर्म देवलोक के अधिपति शक्रेन्द्र महाराज सौधर्मावतंसक विमान की सुधर्मा-सभा में चौरासी हजार सामानिक देवों, तेतीस त्रायस्त्रिंशक देवों, चार लोकपालों, आठ अग्रमहिषियों आदि तथा अन्य देवी-देवताओं के मध्य अपने सिंहासन पर विराज रहे थे। उन सब के समक्ष शक्रेन्द्र ने यह प्ररूपणा की कि—

'हे देवों ! जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में चम्पा नामक नगरी है। वहाँ कामदेव श्रमणोपासक पौषधशाला में रहा हुआ, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा फरमाई गई धर्म-प्रज्ञप्ति का यथावत् पालन करता हुआ धर्मध्यान कर रहा है। किसी भी देव, दानव, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, महोरग और गंधर्व में यह सामर्थ्य नहीं कि वह कामदेव श्रमणोपासक को निर्ग्रंथ-प्रवचन से चलित कर सके, क्षुभित कर सके, विपरिणामित कर सके।

तए णं अहं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो एयमट्ठं असद्दहमाणे, अपत्तियमाणे अरोएमाणे इहं हव्वमागए। तं अहो णं देवाणुप्पिया ! इड्ढी जुई जसो बलं वीरियं पुरिसक्कार-परक्कमे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए। तं दिट्ठा णं देवाणुप्पिया ! इड्ढी जाव अभिसमण्णागया, तं खामेमि णं देवाणुप्पिया ! खमंतु मज्झ देवाणुप्पिया ! खंतुमरहंति णं देवाणुप्पिया णाइं भुज्जो करणयाए त्तिकट्टु पायवडिए पंजलिउडे एयमट्ठं भुज्जो भुज्जो खामेइ खामित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए। तए णं से कामदेवे समणोवासए निरुवसग्गं तिकट्टु पडिमं पारेइ ॥ सू. २३ ॥

अर्थ—तब मैंने शक्रेन्द्र के वचनों पर श्रद्धा, प्रतीति, रुचि नहीं की। उनके वचन को मिथ्या सिद्ध करने के लिए तथा आपको धर्म से डिगाने के लिए मैं यहाँ आया और

आपको अनेक उपसर्ग दिए, किन्तु आप धर्म से तनिक भी डिगे नहीं। धन्य है आपकी ऋद्धि, बल, वीर्य, द्युति, यश और पुरुषार्थ-पराक्रम को। आपकी निर्ग्रंथ-प्रवचन में दृढ़ता और निष्ठा मैंने देखी। हे देवानुप्रिय! आपको मैंने जो उपसर्ग दिये, उस अपराध को क्षमा कीजिए। आप क्षमा करने योग्य हैं। मैं क्षमाप्रार्थी हूं, इत्यादि वचनों से क्षमा मांगता हुआ वह देव, हाथ जोड़ कर कामदेव के पैरों में पड़ कर बार-बार क्षमा याचना की और जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में लौट गया। 'अब मैं निरुपसर्ग हो गया हूं'—ऐसा विचार कर कामदेवजी ने प्रतिमा पाली।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ। तए णं कामदेव समणोवासए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे एवं खलु समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ। तं सेयं खलु मम समणं भगवं महावीरं वंदित्ता नमंसित्ता तओ पडिणियत्तस्स पोसहं पारित्तए त्तिकट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता सुद्धाप्पावेसाइं वत्थाइं जाव अप्पमहग्घ जाव मणुस्सवग्गुरापरिक्खित्ते सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता चंपंणयरिं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव पुण्णभद्दे चेइए जहा संखो जाव पज्जुवासइ। तए णं समणे भगवं महावीरे कामदेवस्स समणोवासयस्स तीसे य जाव धम्मकहा समत्ता॥ सू. २४॥

अर्थ—उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी चंपानगरी पधारे। कामदेव श्रमणोपासक को भगवान् के पधारने का समाचार मिला, तो उन्होंने विचार किया कि भगवान् के समीप जा कर वंदना-नमस्कार एवं पर्युपासना करके फिर पौषध पालना मेरे लिए उचित है। ऐसा विचार कर समवसरण में जाने योग्य शुद्ध वस्त्र पहने तथा अनेक मनुष्यों के समूह से घिरा हुआ अपने घर से निकला। राजमार्ग से होते हुए जहाँ पूर्णभद्र उद्यान था वहाँ आया और (भगवती श. १२ उ. १ वर्णित) शंख श्रावक की भाँति पर्युपासना करने लगे। भगवान् ने कामदेव और उस विशाल जन सभा को धर्म-कथा फरमाई।

कामदेव का आदर्श

"कामदेवाइ ? समणे भगवं महावीरे कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी—से णूणं कामदेवा ! तुब्भं पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि एगे देवे अंतिए पाउब्भूए। तए णं से देवे एगं महं दिव्वं पिसायरूवं विउव्वइ, विउव्वित्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे एगं महं नीलुप्पल जाव असिं गहाय तुमं एवं वयासी—हं भो कामदेवा ! जाव जीवियाओ ववरोविज्जसि, तं तुमं तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरसि एवं वण्णगरहिया तिण्णिवि उवसग्गा तहेव पडिउच्चारेयव्वा जाव देवो पडिगओ, से णूणं कामदेवा अट्ठे समट्ठे ?" "हंता अत्थि।"

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने कामदेव श्रमणोपासक को संबोधित कर फरमाया—'हे कामदेव ! कल मध्य-रात्रि के समय तुम्हारे पास एक देव आया और पिशाच रूप बना कर यावत् मार डालनें की धमकी दी। तुमने निर्भीक रहकर तीनों उपसर्गों को समभाव से सहन किया यावत् वह देव लौट गया, इत्यादि वृत्तांत क्या सत्य है ?' कामदेव ने कहा—"हाँ भगवन् ! सत्य है।"

"अज्जो इ समणे भगवं महावीरे बहवे समणे-णिग्गंथे य णिग्गंथीओ य आमंतेत्ता एवं वयासी—अइ ताव अज्जो ! समणोवासगा गिहिणो गिहमज्झावसंता दिव्वमाणुस्सतिरिक्खजोणिए उवसग्गे सम्मं सहंति जाव अहियासेंति, सक्का पुण्णाइं अज्जो ! समणेहिं णिग्गंथेहिं दुवालसंगं गणिपिडगं अहिज्जमाणेहिं दिव्व-माणुसतिरिक्खजोणिए सम्मं सहित्तए जाव अहियासित्तए, तओ ते बहवे समणा णिग्गंथा य णिग्गंथीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स तहत्ति एयमट्ठं विणए णं पडिसुणंति। तए णं कामदेवे समणोवासए हट्ठ जाव समणं भगवं महावीरं पसिणाइं पुच्छई अट्ठमादियइ, समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए। तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ चंपाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥ सू. २५ ॥

अर्थ—बहुत-से साधु-साध्वियों को आमंत्रित कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने फरमाया—"हे आर्यों! गृहस्थ अवस्था में रह कर श्रावक-धर्म का पालन करते हुए भी जब दैविक, मानवीय और तिर्यंच संबंधी उपसर्गों को श्रमणोपासक सम्यक् प्रकार से सहन करते हैं, परंतु धर्म से विचलित नहीं होते, तो साधु-साध्वियों का तो कहना ही क्या? वे तो द्वादशांगी रूप गणिपिटक के धारक होते हैं। अतः उन्हें तो दैविक मानवीय और तिर्यंच संबंधी उपसर्गों को सम्यक् प्रकार से सहन करना ही चाहिए।"

भगवान् के इन वचनों को सभी साधु-साध्वियों ने विनयपूर्वक स्वीकार किया।

कामदेव ने भगवान् से अनेक प्रश्न पूछ कर अर्थ धारण किये और वंदना-नमस्कार करके जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा में लौट गए। भगवान् भी कालान्तर में चंपा से विहार कर बाहर जनपद में विचरने लगे।

विवेचन—कामदेवजी ने सविधि पौषध पाल कर वस्त्र-परिवर्तन किए। पौषध-सभा में जाने योग्य विशिष्ट वस्त्र नहीं थे।

शंका—"मूलपाठ में तो बिना पौषध पाले ही समवसरण में गये ऐसा वर्णन है, फिर 'आप सविधि पौषध' पालने की बात कैसे कह रहे हैं?"

समाधान—उन्होंने उपवास रूप पौषध नहीं पाला था। पारणा तो भगवान् के पास से लौटने के बाद किया था। यही आशय समझना चाहिए।

तए णं से कामदेवे समणोवासए पढमं उवासगपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तए णं से कामदेवे समणोवासए बहूहिं जाव भवित्ता वीसं वासाइं समणोवासग परियागं पाउणित्ता एक्कारस उवासगपडिमाओ सम्मं काएणं फासेत्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे सोहम्म वडिंसयस्स महाविमाणस्स उत्तरपुरच्छिमेणं अरुणाभे विमाणे देवत्ताए उववण्णे। तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता कामदेवस्सऽवि देवस्स

चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। से णं भंते! कामदेवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गमिहिइ, कहिं उववज्जिहिइ? गोयमा! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ। णिक्खेवो ॥ सू. २६ ॥

॥ सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं बीयं अज्झयणं समत्तं ॥

अर्थ—कामदेव श्रमणोपासक ने श्रावक की पहली प्रतिमा यावत् ग्यारहवीं प्रतिमा की आराधना की। उपवास, बेला, तेला, अठाई, अर्द्ध-मासखमण, मासखमण आदि से आत्मा को भावित की बीस वर्ष तक श्रावक-पर्याय का पालन किया और एकमासिकी संलेखना से साठ भक्त का छेदन किया तथा दोषों की आलोचना-प्रतिक्रमण कर के समाधियुक्त काल कर के प्रथम देवलोक 'सौधर्म कल्प' के सौधर्मावतंसक महाविमान के उत्तरपूर्व-दिशा-भाग में 'अरुणाभ' नामक विमान में उत्पन्न हुए। वहाँ अनेक देवों की स्थिति चार पल्योपम की कही गई है, तदनुसार कामदेव भी चार पल्योपम की स्थिति वाले देव हुए। गौतमस्वामी पूछते हैं—'हे भगवन्! कामदेव उस देवलोक से आयु-भव एवं स्थिति का क्षय कर के वहाँ से च्यव कर कहाँ जा कर उत्पन्न होंगे?

भगवान् ने फरमाया—हे गौतम! वहाँ से वे महाविदेह-क्षेत्र में उत्पन्न हो कर सिद्ध बुद्ध तथा मुक्त बनेंगे।

प्रस्तुत अध्ययन में अनेक पाठों का संकोच हुआ है, वहाँ सारा वर्णन आनन्दजी के समान जानना चाहिए। यथा—श्रावक के व्रत ग्रहण करना, परिग्रह में वर्तमान सम्पत्ति से अधिक का त्याग आदि।

शक्रेन्द्र द्वारा प्रशंसा की जाने पर एक देव द्वारा पिशाच, हाथी एवं सर्प के रूप बना कर उपसर्ग दिए जाने का वर्णन बड़ा ही रोमांचकारी है। कैसे श्रावक थे भगवान् के? कितनी निर्भीकता, कितनी कष्ट-सहिष्णुता!! उनके आदर्श निर्भय जीवन से जितनी शिक्षा ली जा सके, कम है।

कष्टों को समभाव से सहा सो तो ठीक, पर साक्षात् तीर्थंकर देव द्वारा साधु-साध्वियों के मध्य 'महान् प्रशंसा' किए जाने पर भी उन्हें गर्व नहीं हुआ। यह बात भी कम नहीं है। मान-सम्मान को पचा जाने की ऐसी अद्भुत क्षमता बिरलों में ही होती है।

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

तृतीय अध्ययन

चुलनीपिता श्रमणोपासक

उक्खेवो तइयस्स अज्झयणस्स—एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसी णामं णयरी, कोट्ठए चेइए, जियसत्तू राया। तत्थ णं वाणारसीए णयरीए चुलणीपिया णामं गाहावई परिवसइ। अड्ढे जाव अपरिभूए। सामा भारिया। अट्ठ हिरण्णकोडीओ णिहाणपउत्ताओ अट्ठ वुड्ढि पउत्ताओ अट्ठ पवित्थरपउत्ताओ अट्ठ वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं जहा आणंदो राइसर जाव सव्वकज्जवड्ढावए यावि होत्था। सामी समोसढे, परिसा णिग्गया, चुलणीपियावि जहा आणंदो तहा णिग्गओ, तहेव गिहिधम्मं पडिवज्जइ, गोयमपुच्छा तहेव सेसं जहा कामदेवस्स जाव पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ॥ सू. २७॥

अर्थ—तृतीय अध्ययन का प्रारंभ—भगवान् सुधर्मा स्वामी फरमाते हैं—हे जम्बू ! उस काल उस समय जब श्रमण-भगवान् महावीर स्वामी विचर रहे थे, वाणारसी नामक नगरी थी। वहाँ कोष्ठक नाम का उद्यान था। जितशत्रु राजा राज्य करता था। उस वाणारसी नगरी में 'चुलनीपिता' नामक गथापति रहता था, जो ऋद्धि-सम्पन्न यावत् अपराभूत था। उसके आठ करोड़ का धन निधान के रूप में, आठ करोड़ व्यापार में तथा आठ करोड़ की घरबिखरी थी। दस हजार गायों के एक व्रज के हिसाब से आठ व्रज थे। उसकी पत्नी का नाम 'श्यामा' था। भगवान् वहाँ पधारे। परिषद आई। चुलनीपिता ने भी धर्म सुन कर आनन्दजी की भाँति श्रावक-व्रत अंगीकार किया। कालान्तर में कामदेव की भाँति चुलनीपिता पौषधशाला में ब्रह्मचर्मयुक्त पौषध करता हुआ श्रमण-भगवान् महावीर स्वामी द्वारा फरमाई गई धर्म-प्रज्ञप्ति को स्वीकार कर आत्मा को भावित करने लगा।

तए णं तस्स चुलणीपियस्स समणोवासयस्स पुव्वरत्तावरत्तकाल समयंसि एगे देवे अंतियं पाउब्भूए। तए णं से देवे एगं नीलुप्पल जाव असिं गहाय चुलणी- पियं समणोवासयं एवं वयासी—"हं भो चुलणीपिया ! समणोवासया जहा कामदेवो जाव ण भञ्जसि तो ते अहं अज्ज जेट्ठं पुत्तं साओ गिहाओ णीणेमि णीणेमित्ता तव अग्गओ घाएमि, घाएत्ता तओ मंससोल्ले करेमि, करेत्ता आदाण- भरियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि, अद्दहेत्ता तव गायं मंसेण य सोणिएण य आयंचामि, जहा णं तुमं अट्टदुहट्टवसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।" तए णं से चुलणीपिया समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरइ।

अर्थ— अर्द्धरात्रि के समय उसके समीप (कामदेव की भाँति) एक देव आया, तथा नीलकमल के समान खड्ग धारण कर बोला यावत् "यदि तू व्रत-भंग नहीं करेगा, तो मैं आज तेरे सबसे बड़े पुत्र को तेरे घर से ला कर तेरे समक्ष मारूंगा, तथा उसके मांस के तीन खण्ड कर के उबलते हुए तेल के कड़ाह में तलूंगा और उस मांस एवं रक्त का तेरे शरीर पर सिंचन करूंगा, जिससे तू आर्तध्यान के वश हो, अकाल मृत्यु को प्राप्त करेगा।" देव के ऐसे वचन सुन कर भी चुलनीपिता श्रमणोपासक डरे नहीं और धर्म में स्थिरचित्त रहे।

तए णं से देवे चुलणीपियं समणोवासयं अभीयं जाव पासइ, पासित्ता दोच्चंपि तच्चंपि चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी—हं भो चुलणीपिया समणोवासया ! तं चेव भणइ, सो जाव विहरइ। तए णं से देवे चुलणीपियं समणो- वासयं अभीयं जाव पासित्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे चुलणीपियस्स समणोवासयस्स जेट्ठं पुत्तं गिहाओ णीणेइ, णीणेत्ता अग्गओ घाएइ घाएत्ता तओ मंससोल्लए करेइ करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेइ, अद्दाहेत्ता चुलणीपियस्स समणोवासयस्स गायं मंसेण य सोणियेण य आयंचइ, तए णं से चुलणीपिया समणोवासए तं उज्जलं जाव अहियासेइ।

अर्थ— जब देव ने चुलनीपिता श्रमणोपासक को निर्भय देखा, तो दो-तीन बार

उपरोक्त वचन कहे। तब भी उसे धर्मध्यान में लीन देखा, तो देव बहुत कुपित हुआ और चुलनीपिता के सब से बड़े पुत्र को घर से लाया। उस पुत्र को श्रावक के समक्ष ला कर मार डाला और उस के तीन टुकड़े कर के उबलती हुई तेल की कड़ाई में डाल कर, मांस-खण्डों को तला और उस असह्य उष्ण रक्त-मांस से चुलनीपिता के शरीर का सिंचन किया। इससे उसे अत्यन्त भयंकर असह्य वेदना हुई, जिसे चुलनीपिता ने शान्ति-पूर्वक सहन किया और व्रत में स्थिर रहा।

तए णं से देवे चुलणीपियं समणोवासयं अभीयं जाव पासइ, पासित्ता दोच्चंपि चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी—हं भो चुलणीपिया समणो-वासया! अपत्थियपत्थियया जाव ण भज्जसि तो ते अहं अज्ज मज्झिमं पुत्तं साओ गिहाओ णीणेमि णीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि जहा जेट्ठं पुत्तं तहेव भणइ, तहेव करेइ, एवं तच्चंपि कणीयसं जाव अहियासेइ।

·अर्थ— चुलनीपिता के निर्भयता एवं निश्चलता से वेदना सहन करने पर देव ने दूसरी बार मझले पुत्र को मार डालने की धमकी दी यावत् उबलते हुए रक्त-मांस से उसके देह का सिंचन किया। तीसरी बार में छोटे पुत्र को यावत् मार कर चुलनीपिता श्रमणोपासक पर डाला, किन्तु चुलनीपिता धर्म से किंचित् भी नहीं डिगे।

तए णं से देवे चुलणीपियं समणोवासयं अभीयं जाव पासइ, पासित्ता चउत्थं पि चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी—हं भो चुलणीपिया समणो-वासया! अपत्थियपत्थिया ४ जइ णं तुमं जाव ण भज्जसि तओ अहं अज्ज इमा तव माया भद्दा सत्थवाही देवयगुरुजणणी दुक्करदुक्करकारिया तं ते साओ गिहाओ णीणेमि, णीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि, घाएत्ता तओ मंससोल्लए करेमि, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि, अद्दहेत्ता तव गायं मंसेण य सोणि-एण य आयंचामि जहा णं तुमं अट्टदुहट्टवसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरो-विज्जसि। तए णं से चुलणीपिया समणोवासए तेणं देवे णं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरइ।

अर्थ—चुलनीपिता श्रमणोपासक को निर्भय देख कर चौथी बार देव ने कहा—'हे चुलनीपिता ! मृत्यु को चाहना वाले यावत् यदि तु धर्म-च्युत न होगा, तो मैं तेरी माता भद्रा सार्थवाही को, जो तेरे लिए देव-गुरु के समान आदरणीय तथा दुष्कर कार्य करने वाली है, तेरे सामने मार कर उबलते हुए तेल की कड़ाई में तल कर मांस-खण्डों से तुझे लिप्त करूँगा, जिससे तू आर्त्त-ध्यान में अकाल मृत्यु प्राप्त करेगा।' तब भी वे निर्भय रहे।

तए णं से देवे चुलणीपियं समणोवासयं अभीयं जाव विहरमाणं पासइ, पासित्ता चुलणीपियं समणोवासयं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी—हं भो चुलणीपिया समणोवासया ! तहेव जाव ववरोविज्जसि। तए णं तस्स चुलणीपियस्स समणोवासयस्स तेणं देवेणं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्तस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए ५ अहो णं इमे पुरिसे अणारिए अणारियबुद्धी अणारियाइं पावाइं कम्माइं समायरइ। जेणं ममं जेट्ठं पुत्तं साओ गिहाओ णीणेइ, णीणेत्ता मम अग्गओ घाएइ, घाएत्ता जहा कयं तहा चिंतेइ जाव गायं आयंचइ। जेणं ममं मज्झिमं पुत्तं साओ गिहाओ जाव सोणिएण य आयंचइ। जेणं ममं कणीयसं पुत्तं साओ गिहाओ तहेव जाव आयंचइ। जाऽवि य णं इमा ममं माया भद्दा सत्थवाही देवयगुरुजणणी दुक्करदुक्करकारिया तं पि य णं इच्छइ साओ गिहाओ णीणेत्ता मम अग्गओ घाएत्तए। तं सेयं खलु ममं एयं पुरिसं गिण्हित्तए।

अर्थ—प्रथम बार कहने पर चुलनीपिता श्रमणोपासक निर्भय रहे, तो दूसरी-तीसरी बार उपरोक्त वचन कहे। तब चुलनीपिता ने विचार किया—"अहो ! यह पुरुष निश्चय ही अनार्य, अनार्य-बुद्धि वाला तथा पाप कर्मों का आचरण करने वाला है। इसने पहले मेरे बड़े पुत्र को मेरे सामने मार डाला, फिर मंझले को तथा फिर छोटे को। अब कहीं यह मेरी माता को न मार डाले, इसलिए मुझे इसे पकड़ लेना ही उचित है।"

विवेचन—कामदेव अध्ययन में देव ने पिशाच रूप बनाया था, यहाँ सम्भवतः पुरुष का रूप बना कर उपरोक्त उपसर्ग किए, इसी कारण चुलनीपिता ने उसे देवकृत उपसर्ग न समझ कर पुरुषकृत माना। पुरुष वैसा कर भी सकता था, इसी कारण वे पकड़ने को उद्यत हुए। यदि उन्हें देव का ज्ञान होता, तो वे अब भी पूर्ववत् दृढ़ रहते, ऐसा अनुमान होता है।

चुलनीपिता देव पर झपटता है

तिकट्टु उद्धाइए, सेऽवि य आगासे उप्पइए, तेणं च खंभे आसाइए, महया महया सद्देणं कोलाहले कए। तए णं सा भद्दा सत्थवाही तं कोलाहलसद्दं सोच्चा निसम्म जेणेव चुलणीपिया समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी—"किण्णं पुत्ता! तुमं महया महया सद्देणं कोलाहले कए!" तए णं से चुलणीपिया समणोवासए अम्मयं भद्दं सत्थवाहिं एवं वयासी—

अर्थ—ऐसा विचार कर चुलनीपिता श्रमणोपासक उसे पकड़ने के लिए ललकारते हुए उद्यत हुए तो वह देव आकाश में उड़ गया और खम्भा हाथ में आया। चुलनीपिता का उस कोलाहल सुन कर उसकी माता भद्रा सार्थवाही उसके समीप आई और कोलाहल का कारण पूछने लगी। तब चुलनीपिता श्रमणोपासक कहने लगे—

"एवं खलु अम्मो! ण जाणामि केवि पुरिसे आसुरुत्ते ५ एगं महं नीलुप्पल जाव असिं गहाय ममं एवं वयासी—हं भो चुलणीपिया समणोवासया! अपत्थियपत्थिया ४ जइ णं तुमं जाव ववरोविज्जसि। अहं तेणं पुरिसेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरामि। तए णं से पुरिसे ममं अभीयं जाव विहरमाणं पासइ, पासित्ता ममं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी—हं भो चुलणीपिया समणोवासया! तहेव जाव गायं आयंचइ। तए णं अहं तं उज्जलं जाव अहियासेमि। एवं तहेव उच्चारेयव्वं सव्वं जाव कणीयसं जाव आयंचइ। अहं तं उज्जलं जाव अहियासेमि। तए णं से पुरिसे ममं अभीयं जाव पासइ, पासित्ता ममं चउत्थंपि एवं वयासी—हं भो चुलणीपिया समणोवासया! अपत्थियपत्थिया जाव ण भज्जसि तो ते अज्ज जा इमा माया गुरु जाव ववरोविज्जसि। तए णं अहं तेणं पुरिसेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरामि। तए णं से पुरिसे दोच्चंपि तच्चंपि ममं एवं वयासी—हं भो चुलणीपिया समणोवासया! अज्ज जाव ववरोविज्जसि। तए णं तेणं पुरिसेणं दोच्चंपि तच्चंपि ममं एवं वुत्तस्स समाणस्स इमेयारूवे

अज्झत्थिए ५ अहो णं इमे पुरिसे अणारिए जाव समायरइ, जेणं ममं जेट्ठं पुत्तं साओ गिहाओ तहेव जाव कणीयसं जाव आयंचइ। तुब्भेऽवि य णं इच्छइ साओ गिहाओ णीणेत्ता मम अग्गओ घाएत्तए। तं सेयं खलु ममं एयं पुरिसं गिण्हित्तएत्ति कट्टु उद्धाइए। सेऽवि य आगासे उप्पइए। मएऽवि य खंभे आसाइए महया महया सद्देणं कोलाहले कए।

"हे—माता ! न जाने कौन व्यक्ति नीलकमल के समान प्रभा वाला खड्ग ले कर मेरे पास आया और कुपित होकर कहने लगा कि 'हे चुलनीपिता ! यदि तू व्रत-भंग नहीं करेगा, तो मैं तेरे ज्येष्ठ-पुत्र को मार कर तुझ पर उबलता हुआ रक्त-मांस छिड़कूंगा यावत् उसने बड़े पुत्र को मारा। फिर भी मैं धर्म में स्थिर रहा. तब उसने मंझले पुत्र को मार डालने की धमकी दी और मार डाला, फिर छोटे पुत्र को भी यावत् मार डाला। तब भी वह नहीं माना और आपको मार डालने का कहने लगा, तब मैंने विचार किया कि यह कोई अनार्य पापी व्यक्ति है, जिसने मेरे तीनों पुत्रों मार डाला और अब देवगुरु के समान पूज्या माता को भी मारना चाहता है। मैं इसे पकड़ लूं'—ऐसा विचार कर मैंने उसे पकड़ना चाहा, तो वह हाथ नहीं आया। मैं खंभा ही पकड़ पाया। इसीलिए मैंने यह कोलाहल किया है।"

व्रत भंग हुआ प्रायश्चित्त लो

तए णं सा भद्दा सत्थवाही चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी—"णो खलु केइ पुरिसे तव जाव कणीयसं पुत्तं साओ गिहाओ णीणेइ, णीणेत्ता तव अग्गओ घाएइ। एस णं केइ पुरिसे उवसग्गं करेइ। एस णं तुमे विदरिसणे दिट्ठे, तं णं तुमं इयाणिं भग्गव्वए भग्गणियमे भग्गपोसहे विहरसि। तं णं तुमं पुत्ता ! एयस्स ठाणस्स आलोएहि जाव पडिवज्जाहि।" तए णं चुलणीपिया समणोवासए अम्मगाए भद्दाए सत्थवाहीए तहत्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता तस्स ठाणस्स आलोएइ जाव पडिवज्जइ॥ सू. २८॥

अर्थ— तब भद्रा सार्थवाही ने अपने पुत्र से कहा—'चुलनीपिता ! न तो किसी

पुरुष ने तेरे पुत्रों को मारा है, यावत् न कोई पुरुष दुःख देने आया है। किसी मिथ्यात्वी देव की छलना के कारण तुमने भयंकर दृश्य देखा है, जिससे तेरा व्रत, नियम तथा पौषध भग्न हुआ है। हे पुत्र ! इस दोष-स्थान की आलोचना कर तप-प्रायश्चित्त स्वीकार करो। तब पूज्या मातुश्री के वचनों को चुलनीपिता श्रावक ने हाथ जोड़ कर विनयपूर्वक स्वीकार किया, तथा लगे हुए दोष का शुद्धिकरण किया।

विवेचन—चुलनीपिता से उसकी माता ने कहा कि तुमने भयंकर स्वरूप देखा है, जिससे तुम भग्नव्रत हुए हो। स्थूल प्राणातिपात विरमण को तुमने भाव से भंग किया है। भयंकर स्वरूप को क्रोधपूर्वक मारने दौड़े, जिससे व्रत का भंग हुआ, क्योंकि अपराधी को भी मारना व्रत का विषय नहीं है। इसलिए 'भग्ननियम' क्रोध के उदय से उत्तरगुण का भंग हुआ, एवं 'भग्नपौषध'--अव्यापार पौषध व्रत का भी भंग हुआ, इसलिए उसकी आलोचना करो और गुरु के आगे पापों को निवेदन करके उसका प्रायश्चित्त करो, आत्मसाक्षी से उस पाप की निंदा करो, अतिचार रूप मल को साफ कर के व्रत को शुद्ध करो, फिर दोष न लगे, ऐसी सावधानी रखो। यथार्थ तपकर्म रूप प्रायश्चित्त लो।

साधु के समान गृहस्थ भी यथायोग्य प्रायश्चित्त का पात्र है। यह बात इस सूत्र-पाठ से स्पष्ट हो जाती है। उपरोक्त खुलासा श्रीमद् अभयदेव सूरि ने टीका में किया है।

तए णं से चुलणीपिया समणोवासए पढमं उवासगपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। पढमं उवासगपडिमं अहासुत्तं जहा आणंदो जाव एक्कारसवि। तएणं से चुलणीपिया समणोवासए तेणं उरालेणं जहा कामदेवो जाव सोहम्मे कप्पे सोहम्म-वडिंसगस्स महाविमाणस्स उत्तरपुरच्छिमेणं अरुणप्पभे विमाणे देवत्ताए उववण्णे चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ ५ णिक्खेवो ॥ सू. २९ ॥

अर्थ—(कालान्तर में) चुलनीपिता श्रमणोपासक ने प्रथम उपासक प्रतिमा अंगीकार की, यावत् आनंदजी की भाँति ग्यारह ही प्रतिमाओं का घोर-तप सहित शुद्ध आराधन किया यावत् कामदेव की भाँति (बीस वर्ष की श्रावक-पर्याय का पालन किया, मासिकी संलेखना से) प्रथम देवलोक के सौधर्मावतंसक महाविमान के उत्तरपूर्व में स्थित

अरुणप्रभ नामक विमान में उत्पन्न हुए। (वहाँ कई देवों की स्थिति चार पल्योपम की कही गई है, तदनुसार) चुलनीपिता श्रमणोपासक की स्थिति चार पल्योपम की है। (भगवान् महावीर स्वामी से गौतमस्वामी ने पूछा—'हे भगवन्! चुलनीपिता देव, देवभव का क्षय कर के कहाँ उत्पन्न होगा? भगवान् ने फरमाया—'हे गौतम!) वहाँ से च्यव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध बुद्ध मुक्त होगा।

॥ तृतीय अध्ययन समाप्त ॥

चतुर्थ अध्ययन

श्रमणोपासक सुरादेव

उक्खेवओ चउत्थस्स अज्झयणस्स एवं खलु जंबू! ते णं काले णं ते णं समएणं वाणारसी णामं णयरी, कोट्ठए चेइए, जियसत्तु राया, सुरादेवे गाहावई अड्ढे, छ हिरण्णकोडीओ जाव छ वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं, धण्णा भारिया, सामी समोसढे, जहा आणंदो तहेव पडिवज्जइ गिहिधम्मं, जहा कामदेवो जाव समणस्स भगवओ महावीरस्स धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ॥ सू. ३० ॥

अर्थ—चौथे अध्ययन का उत्थान—भगवान् सुधर्मास्वामी फरमाते हैं—हे जंबू! उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विचर रहे थे, तब वाणारसी नामक नगरी थी, कोष्ठक उद्यान था, जितशत्रु राजा राज्य करते थे, वहाँ 'सुरादेव' नामक गाथापति रहते थे। उनके छः करोड़ का धन निधान में, छः करोड़ व्यापार में, तथा छः करोड़ की घरबिखरी थी। दस हजार गायों के एक व्रज के हिसाब से छः व्रज थे। धन्ना नामक पत्नी थी। उस समय श्रमण-भगवान् महावीर स्वामी वाणारसी पधारे। आनन्द की भांति सुरादेव ने भी धर्म सुन कर श्रावक-धर्म स्वीकार किया और कामदेव की भांति पौषधयुक्त होकर भगवान् की धर्मप्रज्ञप्ति का पालन करने लगे।

तए णं तस्स सुरादेवस्स समणोवासयस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि एगे देवे अंतियं पाउब्भवित्था से देवे एगं महं णीलुप्पल जाव असिं गहाय सुरादेवं समणोवासयं एवं वयासी—"हं भो सुरादेवा समणोवासया! अपत्थियपत्थिया ४ जइ णं तुमं सीलाइं जाव ण भंजसि तो ते जेट्ठं पुत्तं साओ गिहाओ णीणेमि, णीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि, घाएत्ता पंच मंससोल्लए करेमि, आदाणभरियंसि

कडाहयंसि अद्दहेमि, अद्दहेत्ता तव गायं मंसेण य सोणिएण य आयंचामि जहा णं तुमं अकाले चेव जिवियाओ ववरोविज्जसि। एवं मज्झिमयं कणीयसं, एक्केक्के पंच सोल्लया, तहेव करेइ, जहा चुलणीपियस्स, णवरं एक्केक्के पंच सोल्लया।

अर्थ—मध्य-रात्रि के समय सुरादेव श्रमणोपासक के समीप एक देव प्रकट हुआ और तीक्ष्ण धार वाली खड्ग लेकर कहने लगा—"हे सुरादेव! यदि तूने श्रावकव्रत का त्याग नहीं किया, तो तेरे बड़े, मंझले और छोटे—तीनों पुत्रों को तेरे समक्ष मार डालूंगा, उबलते तेल में तल कर उनके पाँच-पाँच टुकड़े करके तेरे शरीर पर छिड़कूंगा" यावत् उस देव ने वैसा ही किया, तथा सुरादेव ने समभावपूर्वक वह वेदना सहन की और धर्म में स्थिर-चित्त रहा।

तए णं से देवे सुरादेवं समणोवासयं चउत्थंपि एवं वयासी—हं भो सुरादेवा! समणोवासया! अपत्थियपत्थिया ४ जाव ण परिच्चयसि तो ते अज्ज सरीरंसि जमगसमगमेव सोलस रोगायंके पक्खिवामि तं जहा—सासे कासे (जरे दाहे कुच्छिसूले भगंदरे अरिसए अजीरए दिट्ठिसूले मुद्धसूले अकारिए अच्छिवेयणा कण्णवेयणा कंडुए उदरे) कोढे। जहा णं तुमं अट्टदुहट्ट जाव ववरोविज्जसि। तए णं से सुरादेवे समणोवासए जाव विहरइ। एवं देवो दोच्चंपि तच्चंपि भणइ जाव ववरोविज्जसि।

अर्थ—तब देव बोला—"हे सुरादेव! यदि तू धर्म का त्याग नहीं करता तो मैं एक साथ तेरे शरीर में इन सोलह महारोगों का प्रक्षेप करता हूँ—१ श्वास २ खांसी ३ ज्वर ४ दाह ५ कुक्षिशूल ६ भगंदर ७ बवासीर ८ अजीर्ण ९ दृष्टिशूल १० मस्तकशूल ११ अरोचक १२ आँख की वेदना १३ कान की वेदना १४ खाज १५ उदर रोग और १६ कोढ़। जिससे तू आर्त के वशीभूत हो कर अकाल मृत्यु को प्राप्त होगा। उपरोक्त वचन सुन कर भी सुरादेव धर्म से विचलित नहीं हुए। तब देव ने यही बात दूसरी-तीसरी बार कही।

तए णं तस्स सुरादेवस्स समणोवासयस्स तेणं देवेणं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्तस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए ४ अहो णं इमे पुरिसे अणारीए जाव समायरइ। जेणं ममं जेट्ठं पुत्तं जाव कणीयसं जाव आयंचइ। जेऽवि य इमे सोलह रोगायंका तेऽवि य इच्छइ मम सरीरगंसि पक्खिवित्तए। तं सेयं खलु ममं एयं पुरिसं गिण्हित्तए त्तिकट्टु उद्धाइए। सेऽवि य आगासे उप्पइए, तेण य खंभे आसाइए महया महया सद्देणं कोलाहले कए।

॥ सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं चउत्थं अज्झयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ— उपरोक्त वचन दो-तीन बार सुन कर सुरादेव श्रमणोपासक विचार करने लगा—यह कोई अनार्य पुरुष है, जिसने मेरे तीनों पुत्रों को मार डाला। अब सोलह महा-रोगातंकों का प्रक्षेप करना चाहता है। इसलिए इस अनार्य पुरुष को पकड़ लेना अच्छा है। ऐसा विचार कर सुरादेव आवेशपूर्वक ललकारता हुआ उसे पकड़ने को झपटा, तो वह देव आकाश में उड़ गया और पौषधशाला का खंभा ही हाथ में आया।

तए णं सा धन्ना भारिया कोलाहलं सोच्चा णिसम्म जेणेव सुरादेवे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी—"किण्णं देवाणुप्पिया! तुब्भेहिं महया महया सद्देहिं कोलाहले कए?" तए णं से सुरादेवे समणोवासए धण्णं भारियं एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिए! केऽवि पुरिसे तहेव कहइ जहा चुलणी-पिया। धण्णाऽवि पडिभणइ जाव कणीयसं। णो खलु देवाणुप्पिया! तुब्भं केऽवि पुरिसे सरीरंसि जमगसमगं सोलस-रोगायंके पक्खिवइ, एस णं केऽवि पुरिसे तुब्भं उवसग्गं करेइ।" सेसं जहा चुलणीपियस्स तहा भणइ। एवं सेसं जहा चुलणीपियस्स णिरवसेसं जाव सोहम्मे कप्पे अरुणकंते विमाणे उववण्णे। चत्तारि पलिओवमाइं ठिई। महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ ५। णिक्खेवो॥ सू. ३१॥

अर्थ— कोलाहल सुन कर सुरादेव की पत्नी धन्ना आई और कारण पूछने लगी। सुरादेव ने सोलह रोगातंकों तक का सारा विवरण बताया। तब धन्ना कहने लगी—

"न तो किसी ने तुम्हारे तीनों पुत्रों को मारा है और न किसी ने सोलह रोगों का प्रक्षेप किया है। यह तो किसी पुरुष ने आपको उपसर्ग दिया है। शेष सारा वर्णन चुल्लनीपिता के समान जानना चाहिए यथा—प्रायश्चित्त लेने, शुद्धिकरण, प्रतिमा आराधन, तपस्या, बीस वर्ष की श्रावक-पर्याय, मासिकी संलेखना यावत् प्रथम देवलोक के अरुणकान्त विमान में उत्पत्ति। चार पल्योपम की स्थिति और वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में जन्म ले कर सिद्ध-बुद्ध मुक्त बनेंगे।

॥ चतुर्थ अध्ययन समाप्त ॥

पंचम अध्ययन

श्रमणोपासक चुल्लशतक

एवं खलु जंबू ! ते णं काले णं ते णं समएणं आलभिया णामं णयरी, संखवणे उज्जाणे, जियसत्तू राया, चुल्लसयए गाहावइ अड्ढे जाव छ हिरण्णकोडीओ जाव छ वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं, बहुला भारिया, सामी समोसढे, जहा आणंदो गिहिधम्मं पडिवज्जइ। सेसं जहा कामदेवो जाव धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ॥ सू. ३२ ॥

अर्थ—हे जंबू ! उस काल उस समय में जब भगवान् महावीर स्वामी विचर रहे थे, आलभिका नामक नगरी के बाहर शंखवन नामक उद्यान था, जितशत्रु राजा राज्य करता था। 'चुल्लशतक' नामक ऋद्धिसम्पन्न गाथापति रहता था। उसके छह करोड़ का धन निधान में, छह करोड़ का व्यापार में, छह करोड़ की घरबिखरी व दस हजार गायों का एक व्रज ऐसे छह व्रज थे। भगवान् आलभिका नगरी पधारे। चुल्लशतक ने धर्म सुन कर आनन्दजी की भांति श्रावकव्रत धारण किए। कामदेव की भांति पौषधयुक्त होकर भगवान् द्वारा बताई गई धर्म-विधि अनुसार पालन करने लगा।

तए णं तस्स चुल्लसयगस्स समणोवासयस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि एगे देवे अंतिअं जाव असिं गहाय एवं वयासी—"हं भो चुल्लसयगा समणोवासया ! जाव ण भंजसि तो ते अज्ज जेट्ठं पुत्तं साओ गिहाओ णीणेमि, एवं जहा चुलणीपियं। णवरं एक्केक्के सत्त मंससोल्लया जाव कणीयसं जाव आयंचामि। तए णं से चुल्लसयए समणोवासए जाव विहरइ।

अर्थ—मध्यरात्रि के समय एक देव आया और कहने लगा कि 'हे चुल्लशतक

श्रमणोपासक ! यदि तूने श्रावक-व्रतों का परित्याग नहीं किया, तो तेरे तीनों पुत्रों को सात-सात टुकड़े कर, उबलते तेल में भून कर तेरे शरीर पर छिड़कूंगा। इससे तू आर्त्तध्यान करता हुआ अकाल-मृत्यु से मरेगा।' दो-तीन बार ऐसा कह कर देव ने वैसा ही किया। इससे चुल्लशतक को असह्य वेदना हुई, जिसे उन्होंने समभावपूर्वक सहन की।

तए णं से देवे चुल्लसययं समणोवासयं चउत्थंपि एवं वयासी—"हं भो चुल्लसयगा ! समणोवासया ! जाव ण भंजसि तो ते अज्ज जाओ इमाओ छ हिरण्णकोडिओ णिहाणपउत्ताओ छ वुड्ढिपउत्ताओ छ पवित्थरपउत्ताओ ताओ साओ गिहाओ णीणेमि, णीणेत्ता आलभियाए णयरीए सिंघाडग जाव पहेसु सव्वओ समंता विप्पइरामि। जहा णं तुमं अट्टदुहट्टवसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि। तए णं से चुल्लसयए समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समणे अभीए जाव विहरइ। तए णं से देवे चुल्लसयगं समणोवासयं अभीयं जाव पासित्ता दोच्चंपि तच्चंपि तहेव भणइ जाव ववरोविज्जसि।

अर्थ—तब देव चौथी बार चुल्लशतक श्रमणोपासक को कहने लगा—'यदि तू व्रतों को भंग नहीं करेगा, तो तेरी जो सम्पत्ति छः करोड़ की निधान के रूप में, छः करोड़ की व्यापार में, छः करोड़ की घरबिखरी में है, उसे मैं आलभिया नगरी के सारे मार्गों में बिखेर दूंगा, जिससे तू आर्त्त-ध्यान ध्याता हुआ अकाल-मृत्यु से मर जायेगा। देव के ये वचन सुन कर चुल्लशतक विचलित नहीं हुआ, तो देवने उपरोक्त वचन दो-तीन बार कहे।

तए णं तस्स चुल्लसयगस्स समणोवासयस्स तेणं देवेणं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्तस्स समाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए ४ 'अहो णं इमे पुरिसे अणारिए जहा चुलणीपिया तहा चिंतेइ जाव कणीयसं जाव आयंचइ। जाओऽवि य णं इमाओ ममं छ हिरण्णकोडीओ णिहाणपउत्ताओ छ वुड्ढिपउत्ताओ छ पवित्थरपउत्ताओ ताओऽवि य णं इच्छइ ममं साओ गिहाओ णीणेत्ता आलभियाए णयरीए सिंघाडग जाव विप्पइरित्तए। तं सेयं खलु ममं एयं पुरिसं गिण्हित्तए त्तिकट्टु उद्धाइए जहा सुरादेवो तहेव भारिया पुच्छइ तहेव कहेइ॥ सू. ३१॥

अर्थ—दूसरी-तीसरी बार उपरोक्त वचन सुन कर चुल्लशतक ने विचार किया-
'यह कोई अनार्य पुरुष है। इसने मेरे तीनों पुत्रों को मार कर तेल में तल कर सात-स
टुकड़े कर दिये। अब यह मेरी सारी सम्पत्ति को बिखेर कर नष्ट करना चाहता ह
अतः इसे पकड़ लेना उचित है—ऐसा विचार कर पकड़ने उठा तो केवल खंभा ह
आया। उसका कोलाहल सुन कर बहुला भार्या ने भद्रा की भांति समझाया। उ
आलोचना प्रायश्चित से विशुद्धि की।

सेसं जहा चुलणीपियस्स जाव सोहम्मे कप्पे अरुणसिट्ठे विमाणे उववण
चत्तारि पलिओवमाइं ठिई। सेसं तहेव जाव महाविदेहे वासे सिज्झि
॥ णिक्खेवो ॥ सू. ३४ ॥

॥ सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं पंचमं अज्झयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ— शेष सारा वर्णन चुलनीपिता के समान जानना चाहिए, यावत् अरुणसि
विमान में देवरूप में उत्पन्न हुए। वहाँ चार पल्योपम की स्थिति कही गई है। वहाँ
महाविदेह क्षेत्र में जन्म ले कर सिद्ध-बुद्ध एवं मुक्त बनेंगे।

॥ पंचम अध्ययन सम्पूर्ण ॥

छठा अध्ययन

श्रमणोपासक कुण्डकोलिक

छट्ठस्स उक्खेवओ। एवं खलु जम्बू! तेणं कालेणं तेणं समए णं कम्पिल्लपुरे णयरे। सहस्सम्बवणे उज्जाणे। जियसत्तु राया। कुण्डकोलिए गाहावई। पूसा भारिया। छ हिरण्णकोडीओ णिहाणपउत्ताओ, छ वुड्ढिपउत्ताओ, छ पवित्थरपउत्ताओ, छ वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं। सामी समोसढे। जहा कामदेवो तहा सावयधम्मं पडिवज्जइ। सच्चेव वत्तव्वया जाव पडिलाभेमाणे विहरइ।

अर्थ—छठे अध्ययन का प्रारम्भ। सुधर्मा स्वामी फरमाते हैं—'हे जंबू! भगवान् महावीर स्वामी की विद्यमानता में, कम्पिलपुर नामक नगर था। सहस्राम्र वन नामक उद्यान था। जितशत्रु राजा राज्य करता था। वहाँ 'कुण्डकोलिक' नामक गाथापति रहता था। उसकी पत्नी का नाम पूषा था। छः करोड़ स्वर्ण मुद्राएं भण्डार में, छः करोड़ व्यापार में लगा हुआ था, और छः करोड़ की घर-बिखरी थी। भगवान् का कम्पिलपुर पधारना हुआ। कामदेवजी की भाँति कुण्डकोलिक ने भी बारह प्रकार का श्रावक-धर्म स्वीकार किया, यावत् साधु-साध्वियों को प्रासुक-एषणीय आहार-पानी बहराते हुए रहने लगे।

तए णं से कुण्डकोलिए समणोवासए अण्णया कयाइ पुव्वावरण्हकालसमयंसि जेणेव असोगवणिया जेणेव पुढवीसिलापट्टए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता णाममुद्दगं च उत्तरिज्जगं च पुढवीसिलापट्टए ठवेइ, ठवेत्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

अर्थ—एक दिन दोपहर के समय कुण्डकोलिक श्रमणोपासक अशोकवाटिका में गए और पृथ्वीशिलापट्ट पर बैठे। उन्होंने अपनी नामांकित मुद्रिका व उत्तरीय-वस्त्र उतार कर पृथ्वीशिला पर रखा तथा भगवान् महावीर स्वामी द्वारा बताई गई धर्मविधि का चिन्तन करने लगे।

विवेचन—यद्यपि यहाँ 'सामायिक करने का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, तथापि मुद्रिका व उत्तरीय (नाभि से ऊपर ओढ़ने का वस्त्र) उतारने का कारण सामायिक की क्रिया सम्भव है।' अतः उपरोक्त उल्लेख से जाना जा सकता है कि सामायिक में सांसारिक कपड़े नहीं पहनने की परम्परा कितनी प्राचीन है।

नियतिवाद पर देव से चर्चा

तए णं तस्स कुण्डकोलियस्स समणोवासयस्स एगे देवे अंतियं पाउब्भवित्था। तए णं से देवे णाममुद्दगं च उत्तरिज्जं च पुढवीसिलापट्टओ गेण्हइ, गेण्हित्ता सखिंखिणिं० अंतलिक्खपडिवण्णे कुण्डकोलियं समणोवासयं एवं वयासी—"हं भो कुण्डकोलिय समणोवासया! सुंदरी णं देवाणुप्पिया! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स धम्मपण्णत्ती, णत्थि उट्ठाणे इ वा कम्मे इ वा बले इ वा वीरिए इ वा पुरिसक्कारपरक्कमे इ वा णियया सव्वभावा। मंगुली णं समणस्स भगवओ महावीरस्स धम्मपण्णत्ती, अत्थि उट्ठाणे इ वा कम्मे इ वा बले इ वा वीरिए इ वा पुरिसक्कारपरक्कमे इ वा अणियया सव्वभावा।

अर्थ—धर्मप्रज्ञप्ति की आराधना करते हुए कुण्डकोलिक के पास एक देव आया। उसने कुण्डकोलिक की मुद्रिका और उत्तरीय वस्त्र उठा लिए, तथा घुंघरुओं सहित वस्त्रों से युक्त अंतरिक्ष में रहा हुआ कहने लगा—"अहो कुण्डकोलिक! मंखलिपुत्र गोशालक की धर्मविधि अच्छी है, क्योंकि उसमें उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकारपराक्रम आदि कुछ भी नहीं है। सभी भावों को नियत माना गया है। परन्तु श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की धर्म-प्रज्ञप्ति अच्छी नहीं है, क्योंकि उसमें उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकारपराक्रम आदि माने गए हैं। सभी भावों को अनियत माना गया है।

विवेचन—काल, स्वभाव, कर्म, नियति एवं पुरुषार्थ—ये पाँचों समवाय अनुकूल होने पर ही

कार्य-सिद्धि होती है, तथापि केवल एक की अपेक्षा कर शेष की उपेक्षा करने वाले असत्यभाषण करते हैं। जैसे—१ 'काल' को ही सर्वोसर्वा मानने वालों का कथन है कि—काल ही भूतों (जीवों) को बनाता है, नष्ट करता है, जब सारा जगत् सोता है तब भी काल जाग्रत रहता है। काल-मर्यादा को कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। यथा—

कालः सृजति भूतानि, कालः संहरते प्रजाः।
कालः सुप्तेषु जागर्ति, कालो हि दुरतिक्रमः॥

(२) स्वभाववादी का कथन है—

कण्टकस्य तीक्ष्णत्वं, मयूरस्य विचित्रता।
वर्णश्च ताम्रचूड़ानाम्, स्वभावेन भवन्तिहि॥

काँटे की तीक्ष्णता, मयूर पंखों की विचित्रता, मुर्गे के पंखों का रंग, ये सब स्वभाव से ही होते हैं। बिना स्वभाव के आप से नारंगी नहीं बन सकती।

(५) कर्मवाद का कथन है, कि अपने-अपने कर्म का फल सब को मिलता है। केवल कर्म ही सर्वेसर्वा है।

(४) पुरुषार्थवाद का मन्तव्य है कि पुरुषार्थ के आगे शेष सारे समवाय व्यर्थ है। जो भी होता है, पुरुषार्थ से होता है।

(५) नियतिवादी का अभिमत है—

प्राप्तव्यो नियतिबलाश्रयेण योऽर्थः ? सोऽवश्यं भवति नृणां शुभाऽशुभो वा।
भूतानां महति कृतेऽपि हि प्रयत्ने, नाभव्यं भवति न भाविनोऽस्ति नाशः॥

अर्थ— वही होता है जो नियति के बल से प्राप्त होने योग्य है। चाहे वह शुभ हो या अशुभ। प्राणी चाहे कितना ही प्रयत्न करे, जो होने वाला है, वह अवश्य होता है जो नहीं होना है, वह कदापि नहीं होता है।

उपरोक्त पाँचों समवाय मिल कर ही सत्य है। नियतिवादी कहता है कि पुरुषार्थ से यदि प्राप्ति हो जाती है, तो सभी को क्यों नहीं होती, जो पुरुषार्थ करते हैं। इधर पुरुषार्थवादी नियतिवादियों का खोखलापन बताते हुए कहते हैं कि यदि नियति से ही प्राप्त होने का है, तो पुरुषार्थ क्यों करते हो ? क्यों हाथ-पैर हिलाते हो। रोटी को मुँह में जाना भवितव्यता है, तो अपने-आप पहुँच जायेगी।

देव ने कुण्डकौलिक के समक्ष नियतिवाद का पक्ष प्रस्तुत किया कि यह बात अच्छी है। न तो कोई परलोक है, न पुनर्जन्म। जब वीर्य नहीं तो बल नहीं, कर्म नहीं, बिना कर्म के कैसा सुख और कैसा दुःख ? जो भी होता है, भवितव्यता से होता है।

तए णं से कुण्डकोलिए समणोवासए तं देवं एवं वयासी—"जइ णं देवा! सुंदरी गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स धम्मपण्णत्ती—नत्थि उट्ठाणे इ वा जाव णीयया सव्वभावा, मंगुली णं समणस्स भगवओ महावीरस्स धम्मपण्णत्ती—अत्थि उट्ठाणे इ वा जाव अणियया सव्वभावा। तुमे णं देवा! इमा एयारूवा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे किणा लद्धे, किणा पत्ते, किणा अभिसमण्णागए, किं उट्ठाणेणं जाव पुरिसक्कारपरक्कमेणं, उदाहु अणुट्ठाणेणं अकम्मेणं जाव अपुरिसक्कारपरक्कमेणं?

अर्थ—तब कुण्डकोलिक श्रमणोपासक ने उस देव से कहा—"हे देव! आपने कहा कि 'मंखलिपुत्र गोशालक की धर्मप्रज्ञप्ति अच्छी है। उसमें उत्थान आदि की नास्ति यावत् सभी भाव नियत हैं और श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की धर्म-प्रज्ञप्ति अच्छी नहीं है, क्योंकि उसमें उत्थान आदि का अस्तित्व यावत् सभी भाव अनियत बताए गए हैं।' सो हे देव! तुम्हें इस प्रकार की यह जो दिव्य देव-ऋद्धि, दिव्य देव-द्युति तथा दिव्य देवानुभाग प्राप्त हुआ है, वह उत्थान यावत् पुरुषकारपराक्रम से प्राप्त हुआ है, या अनुत्थान, अकर्म यावत् अपुरुषकारपराक्रम से?"

तए णं से देवे कुण्डकोलियं समणोवासयं एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया! मए इमेयारूवा दिव्वा देविड्ढी ३ अणुट्ठाणेणं जाव अपुरिसक्कारपरक्कमेणं लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया।"

अर्थ—उस देव ने कुण्डकोलिक श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिय! मुझे यह दिव्य ऋद्धि, द्युति, देवानुभाग अनुत्थान से यावत् अपुरुषकार-पराक्रम से प्राप्त हुआ है।"

देव पराजित होगया

तए णं से कुण्डकोलिए समणोवासए तं देवं एवं वयासी—जइणं देवा! तुमे इमा एयारूवा दिव्वा देविड्ढी ३ अणुट्ठाणेणं जाव अपुरिसक्कारपरक्कमेणं लद्धा

पत्ता अभिसमण्णागया। जेसिं णं जीवाणं णत्थि उट्ठाणे इ वा पत्ते किं ण देवा? अह णं देवा। तुमे इमा एयारूवा दिव्वा देवड्ढी ३ उट्ठाणेणं जाव परक्कमेणं लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया तो जं वदसि-सुंदरी णं गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स धम्म-पण्णत्ती—णत्थि उट्ठाणे इ वा जाव णियया सव्वभावा। मंगुली णं समणस्स भगवओ महावीरस्स धम्मपण्णत्ती—अत्थि उट्ठाणे इ वा जाव अणियया सव्वभावा तं ते मिच्छा।

अर्थ—तब कुण्डकोलिक श्रमणोपासक ने उस देव से कहा—"हे देव! यदि तुमने अनुत्थान यावत् अपुरुषकारपराक्रम से ही दिव्य देव-ऋद्धि, द्युति और देवानुभाग प्राप्त कर लिया, तो जो जीव अनुत्थान यावत् अपुरुषकार-पराक्रम वाले हैं, वे देव क्यों नहीं बने? अतः हे देव! तुमने जो यह देव-ऋद्धि प्राप्त की है, वह उत्थान यावत् पुरुषकार-पराक्रम से प्राप्त की है, तब भी तुम यह कहते हो कि 'मंखलिपुत्र गौशालक की धर्म-प्रज्ञप्ति अच्छी है जो सभी भावों को नियत बताती है, तथा भगवान् महावीर स्वामी की धर्म-प्रज्ञप्ति अच्छी नहीं है, जो सभी भावों को अनियत बताती है।' तुम्हारा यह कथन मिथ्या है।

विवेचन—यदि देवभव के योग्य पुरुषार्थ के बिना ही कोई देव बन सकता हो, तो सभी जीव देव ही क्यों नहीं हो गए? अतः देव का यह कथन असत्य है कि 'मैं बिना उत्थानादि के ही देव बन गया हूँ।

तए णं से देवे कुण्डकोलिएणं समणोवासएणं एवं वुत्ते समाणे संकिए जाव कलुससमावण्णे णो संचाएइ कुण्डकोलियस्स समणोवासयस्स किंचि पामोक्ख-माइक्खित्तए। णाममुद्दयं च उत्तरिज्जयं च पुढविसिलापट्टए ठवेइ, ठवित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

अर्थ—कुण्डकोलिक का उपरोक्त कथन सुन कर देव शंकित हो गया, उसका चित्त भ्रमित हो गया। अतः वह कुण्डकोलिक को कुछ भी प्रत्युत्तर नहीं दे सका, वरन् स्वयं निरुत्तर पराजित हो गया। नामांकित अंगूठी तथा उत्तरीय वस्त्र को पृथ्वीशिलापट्टक पर

रख कर जहाँ से आया था, वहीं चला गया।

कुण्डकोलिक तुम धन्य हो

ते णं काले णं तेणं समएणं सामी समोसढे। तए णं से कुंडकोलिए समणोवासए इमीसे कहाए लद्धट्ठे हट्ठ जहा कामदेवो तह णिग्गच्छइ जाव पज्जुवासइ धम्मकहा ॥ सू. ४१ ॥

अर्थ—उस समय भगवान् महावीर स्वामी कम्पिल्लपुर पधारे। भगवान् के पधारने का वृत्तांत जान कर कुण्डकोलिक बहुत हर्षित हुए यावत् कामदेव की भाँति पर्युपासना करने लगे। भगवान् ने धर्मदेशना फरमाई।

"कुण्डकोलियाइ"। समणे भगवं महावीरे कुण्डकोलियं समणोवासयं एवं वयासी—"से णूणं कुण्डकोलिया! कल्लं तुब्भं पुव्वावरण्हकालसमयंसि असोगवणियाए एगे देवे अंतियं पाउब्भवित्था। तए णं से देवे णाममुद्दं च तहेव जाव पडिगए। से णूणं कुण्डकोलिया! अट्ठे समट्ठे?" "हंता अत्थि।" "तं धण्णे सि णं तुमं कुण्डकोलिया! जहा" कामदेवो।

अर्थ—कुण्डकोलिक को संबोधित कर भगवान् महावीर स्वामी ने फरमाया—"हे कुण्डकोलिक! कल दोपहर के समय अशोकवाटिका में तुम्हारे समीप एक देव आया और उसने तुम्हारे उत्तरीय व नामांकित मुद्रिका उठाई यावत् प्रश्नोत्तरों का वर्णन यावत् लौट गया। हे कुण्डकोलिक! क्या यह बात सत्य है?" कुण्डकोलिक ने उत्तर दिया—"हाँ भगवन्! सत्य है।" तब भगवान् महावीर स्वामी ने फरमाया—"हे कुण्डकोलिक! तुम धन्य हो" यावत् कामदेव के समान सारा वर्णन जानना।

"अज्जो इ!" समणे भगवं महावीरे समणे णिग्गंथे य णिग्गंथीओ य आमंतित्ता एवं वयासी—"जइ ताव अज्जो गिहिणो गिहिमज्झावसंता णं अण्णउत्थिए अट्ठेहि य हेऊहि य पसिणेहि य कारणेहि य वागरणेहि य णिप्पट्ठपसिणवागरणे

करेंति। सक्का पुणाइं अज्जो समणेहिं णिग्गंथेहिं दुवालसंगं गणिपिडगं अहिज्ज-माणेहिं अण्णउत्थिया अट्ठेहि य जाव णिप्पट्ठपसिणवागरणा करित्तए। तए णं समणा णिग्गंथा य णिग्गंथीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स "तहत्ति" एयमट्ठं विण-एणं पडिसुणेंति। तए णं से कुण्डकोलिए समणोवासए समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता पसिणाइं पुच्छइ, पुच्छित्ता अट्ठमादियइ, अट्ठमादियत्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए। सामी बहिया जणवयविहारं विहरइ॥ सू. ४२॥

अर्थ—तत्पश्चात् भगवान् महावीर स्वामी ने साधु-साध्वियों को आमंत्रित कर फरमाया—"हे आर्यो! गृहस्थावस्था में रहे हुए श्रावक भी अन्यतीर्थियों को अर्थ, हेतु, प्रश्न, कारण, आख्यान आदि तथा प्रश्नोत्तरों से निरुत्तर कर देते हैं, तो द्वादशांग के अध्येता गणिपिटकधर साधु-साध्वी का तो कहना ही क्या? उन्हें तो अवश्य ही अन्य-तीर्थियों को निरुत्तर करना चाहिए। तब उपस्थित साधु-साध्वियों ने भगवान् के कथन को विनयपूर्वक स्वीकार किया। तत्पश्चात् कुण्डकोलिक ने वंदना नमस्कार कर भगवान् से प्रश्न पूछ कर अर्थ धारण किए तथा अपने स्थान चले गए। अयन्दा भगवान् बाहर जनपद में विचरने लगे।

तए णं तस्स कुण्डकोलियस्स समणोवासयस्स बहूहिं सील जाव भावेमाण-स्स चोद्दस संवच्छराइं वइक्कंताइं पण्णरसमस्स संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स अण्णया कयाइ जहा कामदेवो तहा जेट्ठपुत्तं ठवेत्ता तहा पोसहसालाए जाव धम्म-पण्णत्ति उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। एवं एक्कारस उवासगपडिमाओ तहेव जाव सोहम्मे कप्पे अरुणज्झए विमाणे जाव अंतं काहिइ॥ सू. ४३॥

॥ सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं छट्ठं अज्झयणं समत्तं॥

अर्थ—कुण्डकोलिक श्रमणोपासक बहुत-से शीलव्रत, गुणव्रत यावत् पौषधोपवास तथा तपस्या से आत्मा को भावित करते हुए रहने लगे। श्रावक-पर्याय के चौदह वर्ष

व्यतीत हो जाने के बाद पन्द्रहवें वर्ष के किसी दिन कामदेव की भाँति ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब का मुखिया नियुक्त कर के पोषधशाला में धर्म-विधि की आराधना करने लगे। ग्यारह उपासकप्रतिमाओं का सम्यक् आराधन-स्पर्शन एवं परिपालन किया। यावत् सारा वर्णन जान लेना चाहिए। संलेखना कर के समाधिपूर्वक काल कर के प्रथम सौधर्म देवलोक के अरुणध्वज नामक विमान में चार पल्योपम की स्थिति वाले देव हुए। वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में जन्म ले कर सिद्ध-बुद्ध यावत् सभी दुःखों का अंत करेंगे।

॥ छठा अध्ययन सम्पूर्ण ॥

सप्तम अध्ययन

श्रमणोपासक सकडालपुत्र

सत्तमस्स उक्खेवो। पोलासपुरे णामं णयरे, सहस्संबवणे उज्जाणे, जियसत्तु राया। तत्थ णं पोलासपुरे णयरे सद्दालपुत्ते णामं कुंभकारे आजीविओवासए परिवसइ। आजीवियसमयंसि लद्धट्ठे गहियट्ठे पुच्छियट्ठे विणिच्छियट्ठे अभिगयट्ठे अट्ठिमिंजपेमाणुरागरत्ते य "अयमाउसो! आजीवियसमए अट्ठे अयं परमट्ठे सेसे अणट्ठे" त्ति आजीवियसमएणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

अर्थ—सप्तम अध्ययन के प्रारम्भ में भगवान् सुधर्मा स्वामी फरमाते हैं—"हे जंबू! उस समय पोलासपुर नामक नगर के बाहर सहस्राम्रवन नामक उद्यान था। जितशत्रु राजा था। वहाँ गोशालक-मत 'आजीविक' को मानने वाला सकडालपुत्र नामक कुम्हार रहता था। वह आजीविक मत को भलिभांति समझा हुआ था। उसके मन में आजीविक मत की दृढ़ श्रद्धा थी। हड्डी और हड्डी की मज्जा तक आजीविक-मत के प्रेम में रंगी हुई थी। वह इसे अर्थ, परमार्थ एवं शेष को अनर्थ मानता था।

तस्स णं सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स एक्का हिरण्णकोडी णिहाणपउत्ता एक्का वुड्ढिपउत्ता एक्का पवित्थरपउत्ता एक्के वए दसगोसाहस्सिएणं वएणं। तस्स णं सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स अग्गिमित्ता णामं भारिया होत्था। तस्स णं सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स पोलासपुरस्स णयरस्स बहिया पंच कुंभकारावणसया होत्था। तत्थ णं बहवे पुरिसा दिण्णभइभत्तवेयणा कल्लाकल्लिं बहवे करए य वारए य पिहडए य घडए य अद्धघडए य कलसए य अलिंजरए य जंबूलए य उट्टियाओ य करेंति, अण्णे य से बहवे पुरिसा दिण्णभइ-

भत्तवेयणा कल्लाकल्लिं तेहिं बहूहिं करएहि य जाव उट्टियाहि य रायमग्गंसि वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति ।

अर्थ—सकडालपुत्र आजीविकोपासक के पास एक करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ निधान में थी, एक करोड़ व्यापार में तथा एक करोड़ की घर-बिखरी थी। दस हजार गायों का एक व्रज था। उसकी पत्नी का नाम 'अग्निमित्रा' था। पोलासपुर नगर के बाहर उसके मिट्टी के बरतन बनाने की पाँच सौ दुकानें थीं। उसने अनेक पुरुषों को भोजन और वेतन दे कर नौकर रख लिया था जो प्रतिदिन बहुत-से छोटे-बड़े लोटे, थालियाँ, मटके, मटकियाँ, कलशे, गोलियाँ, सुराही—कुंजे, प्रमाणोपेत घड़े आदि बनाया करते थे। अन्य बहुत-से नौकर थे जो उन बरतनों को राजमार्ग पर बेचा करते थे। इस प्रकार वह कुंभकार अपना व्यवसाय चलाया करता था।

सकडालपुत्र को देव-सन्देश

तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए अण्णया कयाइ पुव्वावरण्हकालसमयंसि जेणेव असोगवणिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स एगे देवे अंतियं पाउब्भवित्था। तए णं से देवे अंतलिक्खपडिवण्णे सखिंखिणियाइं जाव परिहिए सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासी—

अर्थ—एक दिन सकडालपुत्र आजीविकोपासक मध्याह्न के समय अशोकवाटिका में जा कर मंखलिपुत्र गोशालक की धर्मविधि का चिन्तन करने लगा। वहाँ एक देव आया। घुंघरुओं सहित श्रेष्ठ वस्त्रों का धारण करने वाला वह देव आकाश में रह कर यों कहने लगा—

एहिइ णं देवाणुप्पिया कल्लं इहं महामाहणे उप्पण्णणाणदंसणधरे तीयपडुप्पण्णमणागयजाणए अरहा जिणे केवली सव्वण्णू सव्वदरिसी तेलोक्कवहियमहियपूइए सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स अच्चणिज्जे वंदणिज्जे सक्कारणिज्जे संमाणणिज्जे

कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं जाव पज्जुवासणिज्जे तच्चकम्मसंपया पउत्ते। तं णं तुमं वंदेज्जाहि जाव पज्जुवासेज्जाहि। पाडिहारिएणं पीढफलगसिज्जासंथारएणं उवणिमंतेज्जाहि।" दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयइ वइत्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

"हे देवानुप्रिय! कल यहाँ महामाहन् पधारेंगे जो केवलज्ञान-दर्शन के धारक, भूत वर्तमान और भविष्य के सम्पूर्ण ज्ञाता, अरिहंत, जिन, केवली, सर्वज्ञ-सर्वदर्शी, तीनों लोक में वंदनीय महामहिम, त्रिलोक पूजित, सभी देव-दानव और मनुष्य सहित सारे लोकवासियों द्वारा वे अर्चनीय हैं, वंदनीय हैं, सत्कार-सम्मान के योग्य हैं, कल्याणकारी हैं, विघ्नों का नाश करने के कारण मंगलकारी हैं, देवाधिदेव हैं, ज्ञान रूप हैं यावत् पर्युपासना के योग्य तथा विशुद्ध तपप्रभाव से जिन्हें अनंत चतुष्टय, अष्ट महाप्रातिहार्य, चौंतीस अतिशयादि की प्राप्ति हुई है, ऐसे एक महापुरुष पधारेंगे। तुम उनके पास जा कर वंदना-नमस्कार करना यावत् पर्युपासना करना। पाट-बाजोट, स्थान, संस्तारक आदि इच्छित वस्तुओं का आमन्त्रण देना यावत् सेवा करना।" दो-तीन बार उपरोक्त कथन कह कर देव जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में लौट गया।

तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स आजीवियोवासगस्स तेणं देवेणं एवं वुत्तस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए ४ समुप्पण्णे—एवं खलु ममं धम्मायरिए धम्मोवएसए गोसाले मंखलिपुत्ते से णं महामाहणे उप्पण्णणाणदंसणधरे जाव तच्चकम्मसंपया संपउत्ते से णं कल्लं इहं हव्वमागच्छिस्सइ। तए णं तं अहं वंदिस्सामि जाव पज्जुवासिस्सामि पडिहारिएणं जाव उवणिमंतिस्सामि।

अर्थ— देव के द्वारा उपरोक्त कथन सुन कर सकडालपुत्र ने विचार किया कि मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक मंखलिपुत्र गोशालक महामाहन यावत् अतिशयधारी हैं। वे कल यहाँ पधारेंगे। मैं उन्हें वन्दना-नमस्कार यावत् पर्युपासना करूँगा। प्रतिहारिक पीठ-फलक आदि का निमन्त्रण करूँगा।

विवेचन— यद्यपि देव ने तो भगवान् महावीर स्वामी के लिए महामाहन, सर्वज्ञ आदि शब्दों का प्रयोग किया था, पर सकडालपुत्र ने गोशालक के लिए सारा वृतान्त समझा।

तए णं कल्लं जाव जलंते समणे भगवं महावीरे जाव समोसरिए, परिसा णिग्गया जाव पज्जुवासइ। तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे—एवं खलु समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ। तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि जाव पज्जुवासामि। एवं संपेहेइ संपेहित्ता ण्हाए जाव पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे मणुस्सवग्गुरा-परिगए साओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता पोलासपुरं णयरं मज्झं-मज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता जाव पज्जुवासइ।

अर्थ—प्रातःकाल होने पर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पोलासपुर के सहस्राम्र-वन उद्यान में पधारे। परिषद धर्मकथा सुनने के लिए गई, और पर्युपासना करने लगी। सकडालपुत्र आजीविकोपासक को ज्ञात हुआ कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे हैं, तो उसने स्नान किया, सभा के योग्य वस्त्र धारण किए, वजन में अल्प और मूल्य में ऊँचे आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया और मित्रजनों से घिरा हुआ वह राजमार्ग से सहस्राम्रवन उद्यान में भगवान् के समीप आया और तीन बार आवर्तनयुक्त वंदना-नमस्कार कर पर्युपासना करने लगा।

तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स तीसे य महइ जाव धम्मकहा समत्ता। "सद्दालपुत्ता इ!" समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासी—"से णूणं सद्दालपुत्ता! कल्लं तुमं पुव्वावरण्ह-कालसमयंसि जेणेव असोगवणिया जाव विहरसि, तए णं तुब्भं एगे देवे अंतियं पाउब्भवित्था, तए णं से देवे अंतलिक्खपडिवण्णे एवं वयासी—हं भो सद्दालपुत्ता! तं चेव सव्वं जाव पज्जुवासिस्सामि। से णूणं सद्दालपुत्ता! अट्ठे समट्ठे?" "हंता अत्थि। णो खलु सद्दालपुत्ता! तेणं देवेणं गोसालं मंखलिपुत्तं पणिहाय एवं वुत्ते।

अर्थ—तब भगवान् ने शकडालपुत्र आजीविकोपासक को तथा उस विशाल जन-सभा को धर्मकथा फरमाई। धर्मकथा समाप्त होने पर भगवान् ने सकडालपुत्र को संबोधित

कर फरमाया—"हे सकडालपुत्र ! कल दोपहर के समय जब तुम अशोकवाटिका में थे, तब एक देव तुम्हारे पास आया और उसने उपरोक्त बात कही। तुमने उसे गोशालक के लिए समझा यावत् उसकी पर्युपासना का विचार किया इत्यादि। यह बात सत्य है ?" सकडालपुत्र ने उत्तर दिया—"हाँ भगवन् ! सत्य है।" तब भगवान् ने फरमाया—"हे सकडालपुत्र ! देव का कथन मंखलिपुत्र गोशालक के लिये नहीं था।

तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्तस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए ४—'एस णं समणे भगवं महावीरे महामाहणे उप्पण्णणाणदंसणधरे जाव तच्चकम्मसंपयासंपउत्ते। तं सेयं खलु ममं समणं भगवं वंदित्ता णमंसित्ता पाडिहारिएणं पीढफलग जाव उवणिमंतित्तए।' एवं संपेहेइ, संपेहित्ता उट्ठाए उट्ठेइ उट्ठित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, णमंसित्ता एवं वयासी—"एवं खलु भंते! ममं पोलासपुरस्स णयरस्स बहिया पंच कुंभकारावणसया। तत्थ णं तुब्भे पाडिहारियं पीढ जाव संथारयं ओगिण्हित्ता णं विहरइ। तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स पंच-कुंभकारावणसएसु फासुएसणिज्जं पाडिहारियं पीढफलग जाव संथारयं ओगिण्हित्ता णं विहरइ।

अर्थ—सकडालपुत्र को भगवान् के वचन सुन कर यह ज्ञात हो गया कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी महामाहन यावत् सर्वज्ञ-सर्वदर्शी हैं। उसने विचार किया कि मुझे अपनी पाँच सौ दुकानें यावत् पीढ-फलक का निमंत्रण देना उचित है। ऐसा सोच कर वंदना नमस्कार करके उसने भगवान् से प्रार्थना की—"हे भगवन् ! पोलासपुर नगर के बाहर मेरी पाँच सौ दुकानें हैं। आप वहाँ पाट-पाटले ग्रहण कर विराजें।" भगवान् ने सकडालपुत्र की बात स्वीकार कर के प्रासुक एषणीय पाट-पाटले ग्रहण कर वहाँ रहने लगे।

भगवान् और सकडालपुत्र के प्रश्नोत्तर

तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए अण्णया कयाइ वायाहयं कोलाल-

भंडं अंतो सालाहिंतो बहिया णीणेइ, णीणित्ता आयवंसि दलयइ। तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासी—"सद्दालपुत्ता! एसणं कोलालभंडे कओ?" तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए समणं भगवं महावीरं एवं वयासी—"एस णं भंते! पुव्वि मट्टिया आसी, तओ पच्छा उदएणं णिगिज्जइ, णिगिज्जित्ता छारेण य करिसेण य एगयओ मीसिज्जइ मीसिज्जित्ता चक्के आरोहिज्जइ। तओ बहवे करगा य जाव उट्टियाओ य कज्जति।"

अर्थ— एक दिन सकडालपुत्र आजीविकोपासक वायु से कुछ सूखे बर्तनों को घर से बाहर निकाल कर धूप में सुखा रहा था। उस समय वहाँ पधारे हुए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सकडालपुत्र आजीविकोपासक से कहा—"हे सकडालपुत्र! ये मिट्टी के बर्तन कैसे बने हैं?" तब सकडालपुत्र ने उत्तर दिया—

"हे भगवन्! पहले यह सब मिट्टी रूप में थे। उस मिट्टी को पानी में भिगोया जाता है। फिर उसमें राख एवं लीद मिलाते हैं, तथा उस पिण्ड को खूब खूंदा जाता है, तब उसे चाक पर चढ़ा कर भाँति-भाँति के बर्तन बनाए जाते हैं।"

तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तं आजीविओवासगं एवं वयासी—"सद्दालपुत्ता! एस णं कोलालभंडे किं उट्ठाणेणं जाव पुरिसक्कारपरक्कमेणं कज्जइ उदाहु अणुट्ठाणेणं जाव अपुरिसक्कारपरक्कमेणं कज्जइ?" तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए समणं भगवं महावीरं एवं वयासी—"भंते! अणुट्ठाणेणं जाव अपुरिसक्कारपरक्कमेणं, णत्थि उट्ठाणे इ वा जाव परक्कमे इ वा, णियया सव्वभावा।

अर्थ— तब भगवान् महावीर स्वामी ने सकडालपुत्र आजीविकोपासक से पूछा— "हे सकडालपुत्र! ये मिट्टी के बर्तन उत्थान यावत् पुरुषकार-पराक्रम से बने हैं या (बिना बनाए ही) अनुत्थान यावत् अपुरुषकार-पराक्रम से बने हैं?

सकडालपुत्र ने उत्तर दिया—"हे भगवन्! अनुत्थान यावत् अपुरुषकार पराक्रम से बने हैं। इसमें उत्थान यावत् पुरुषकार-पराक्रम नहीं है। क्योंकि सभी भाव नियत हैं।"

तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तं आजीविओवासगं एवं वयासी—"सद्दालपुत्ता ! जइ णं तुब्भं केइ पुरिसे वायाहयं वा पक्केल्लयं वा कोलालभंडं अवहरेज्जा वा विक्खिरेज्जा वा भिंदेज्जा वा अच्छिंदेज्जा वा परिट्ठवेज्जा वा अग्गिमित्ताए वा भारियाए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरेज्जा, तस्स णं पुरिसस्स किं दंडं वत्तेज्जासि ? भंते "! "अहं णं तं पुरिसं आओसेज्जा वा हणेज्जा वा बंधेज्जा वा महेज्जा वा तज्जेज्जा वा तालेज्जा वा णिच्छोडेज्जा वा णिब्भच्छेज्जा वा अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेज्जा।"

अर्थ—तब भगवान् ने सकडालपुत्र से पूछा—" हे सकडालपुत्र ! यदि कोई पुरुष धूप में सूखे हुए इन कच्चे और पके बरतनों को अपहरण कर ले, बिखेर दे, फेंक दे, फोड़ दे, छेद करदे, अथवा फेंक दे और तेरी अग्निमित्रा भार्या के साथ भोग भोगे, तो तुम उस पुरुष को दण्ड दोगे क्या ?" तब सकडालपुत्र ने कहा—

" हे भगवन् ! ऐसे पुरुष पर मैं आक्रोश करूंगा, डण्डे आदि से मारूंगा, रस्सी आदि से बाँधूंगा, पीटूंगा, थप्पड़-मुक्के आदि से ताड़ना-तर्जना करूंगा, उसे फटकारूंगा, तिरस्कार करूंगा यावत् जीवन-रहित कर दूंगा।

"सद्दालपुत्ता ! णो खलु तुब्भं केइ पुरिसे वायाहयं वा पक्केल्लयं वा कोलालभण्डं अवहरइ वा जाव परिट्ठवेइ वा अग्गिमित्ताए वा भारियाए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ, णो वा तुमं तं पुरिसं आओसेज्जसि वा हणिज्जसि वा जाव अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेज्जसि। जइ णत्थि उट्ठाणे इ वा जाव परक्कमे इ वा णियया सव्वभावा, अह णं तुब्भं केइ पुरिसे वायाहयं जाव परिट्ठवेइ वा अग्गिमित्ताए वा जाव विहरइ। तुमं वा तं पुरिसं आओसेसि वा जाव ववरोवेसि तो जं वदसि णत्थि उट्ठाणे इ वा जाव णियया सव्वभावा तं ते मिच्छा।"

अर्थ—तब भगवान् ने फरमाया—"हे सकडालपुत्र ! तुम्हारे मतानुसार न तो कोई पुरुष तुम्हारे कच्चे-पके बरतन चुराता यावत् फेंकता है और न कोई अग्निमित्रा भार्या

के साथ भोग ही भोगता है। इसलिये तुम उस पुरुष पर न तो आक्रोश करोगे यावत् प्राणरहित नहीं करोगे। यदि उत्थान यावत् पुरुषकार-पराक्रम नहीं है, सभी भाव नियत हैं, जो होना होता है वही होता है, तो तुम बरतन चुराने वाले यावत् फेंकने वाले को तथा अग्निमित्रा भार्या के साथ कुकर्म करने वाले को आक्रोश यावत् प्राण-वध क्यों दोगे? अतः उत्थान यावत् पुरुषकार-पराक्रम नहीं मानने का तुम्हारा मत मिथ्या है।"

सकडालपुत्र समझा और श्रमणोपासक बना

एत्थ णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए संबुद्धे। तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—"इच्छामि णं भंते! तुब्भं अंतिए धम्मं णिसामेत्तए।" तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स तीसे य जाव धम्मं परिकहेइ।

अर्थ— भगवान् का युक्तियुक्त वचन सुन कर सकडालपुत्र ने प्रतिबोध पाया। उसने भगवान् को वन्दना-नमस्कार कर कहा—"हे भगवन्! मेरी इच्छा है कि आपसे धर्म सुनूं।" तब भगवान् ने उसे एवं अन्य उपस्थित जन-समुदाय को धर्म-कथा फरमाई।

तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियए जहा आणंदो तहा गिहिधम्मं पडिवज्जइ। णवरं एगा हिरण्णकोडी णिहाणपउत्ता एगा हिरण्णकोडी वुड्ढिपउत्ता एगा हिरण्णकोडी पवित्थरपउत्ता एगे वए दसगोसाहस्सिएणं वएणं। जाव समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव पोलासपुरे णयरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता पोलासपुरं णयरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे जेणेव अग्गिमित्ता भारिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अग्गिमित्तं भारियं एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिए! समणे भगवं महावीरे जाव समोसढे, तं गच्छाहि णं तुमं समणं भगवं महावीरं वंदाहि जाव पज्जुवासाहि, समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जाहि।" तए णं सा

अग्गिमित्ता भारिया सद्दालपुत्तस्स समणोवासगस्स "तहत्ति" एयमट्ठं विणएण पडिसुणेइ ।

अर्थ—धर्मकथा सुन कर आनन्दजी की भांति सकडालपुत्र ने भी श्रावक के बारह व्रत स्वीकार किए । विशेषता यह है कि पाँचवें परिग्रह-परिमाण में एक करोड़ स्वर्णमुद्रा निधान में, एक करोड़ व्यापार में तथा एक करोड़ की धर-बिखरी और दस हजार गायों का एक व्रज, इस के उपरांत परिग्रह का त्याग किया । व्रत ग्रहण कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वंदना-नमस्कार किया और अपने घर आ कर अग्निमित्रा भार्या से कहा—"हे देवानुप्रिए ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी यहाँ बिराजमान हैं । तुम जाओ, वंदना-नमस्कार यावत् पर्युपासना करो । पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप श्रावकधर्म स्वीकार करो ।' अग्निमित्रा भार्या ने सकडालपुत्र की बात विनयपूर्वक स्वीकार की ।

अग्निमित्रा श्रमणोपासिका हुई

तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए कोडंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! लहुकरणजुत्तजोइयं समखुरवालिहाणसमलिहियसिंगएहिं जंबूणयामयकलावजोत्तपइविसिट्ठएहिं रययामयघंटसुत्तरज्जुगवर-कंचण-खइयणत्थापग्गहोग्गहियएहिं णीलुप्पलकयामेलएहिं पवरगोणजुवाणएहिं णाणामणिकणगघंटियाजालपरिगयं सुजायजुगजुत्तउज्जुगपसत्थसुविरइयणिम्मियं पवरलक्खणोववेयं जुत्तामेव धम्मियं जाणप्पवरं उवट्ठवेह, उवट्ठवेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह । तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति ।

अर्थ—तब सकडालपुत्र ने अपने कर्मचारियों को बुला कर कहा—"शीघ्र ही शीघ्रगति वाला रथ उपस्थित करो, जिसमें जोते जाने वाले बैल दक्ष, खुर तक लम्बी पूंछ वाले, सरीखे सींगों वाले, गले में सुनहरे आभूषण पहने हुए, सुनहरी नक्काशीदार जोत वाले, गले में लटकते हुए चाँदी के घुघरु वाले, सुनहरी सूत की नाथ से बंधे हुए, मस्तक पर नील कमल के समान कलंगी धारण किए हुए हों और युवावस्था वाले हों ।" कर्मचारियों ने आज्ञानुसार कार्य कर आज्ञा प्रत्यर्पित की ।

तए णं सा अग्गिमित्ता भारिया ण्हाया जाव पायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं जाव अप्पमहग्घाभरणलंकियसरीरा चेडिया चक्कवालपरिकिण्णा धम्मियं जाणप्पवरं दुरुहइ, दुरुहित्ता पोलासपुरं णयरं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो जाव वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता णच्चासण्णे णाइ दूरे जाव पंजलिउडा ठिइया चेव पज्जुवासइ। तए णं समणे भगवं महावीरे अग्गिमित्ताए तीसे य जाव धम्मं कहेइ।

अर्थ—अग्निमित्रा ने स्नान कर सभा में जाने योग्य शुद्ध वस्त्र धारण किए और आभूषणों से देह-विभूषित की। तत्पश्चात् दासियों के समूह से परिवृत होकर धार्मिक रथ पर बैठ कर पोलासपुर से निकली तथा सहस्राम्रवन उद्यान में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समीप गई। तीन बार वंदना-नमस्कार कर, न अधिक दूर न अधिक निकट हाथ जोड़ कर पर्युपासना करने लगी। भगवान् ने धर्म-देशना फरमाई।

तए णं सा अग्गिमित्ता भारिया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठा समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—"सद्दहामि णं भंते! णिग्गंथं पावयणं जाव से जहेयं तुब्भे वयह। जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे उग्गा भोगा जाव पव्वइया, णो खलु अहं तहा संचाएमि देवाणुप्पियाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता जाव अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जिस्सामि।"
"अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह।"

अर्थ—धर्म सुन कर अग्निमित्रा भार्या ने भगवान् से निवेदन किया—"हे भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर श्रद्धा करती हूँ, यावत् जैसा आपने फरमाया वैसा ही है, यथार्थ है। जिस प्रकार बहुत-से राजा राजेश्वर आपके समीप संयम धारण करते हैं, वैसी मेरी सामर्थ्य नहीं है। मैं आपश्री से पाँच अणुव्रत एवं सात शिक्षा-व्रत रूप श्रावक धर्म स्वीकार करूँगी।" भगवान् ने फरमाया—"हे देवानुप्रिया! जैसे सुख हो, वैसा करो, धर्म-कार्य में प्रमाद मत करो।"

तए णं सा अग्गिमित्ता भारिया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं सावगधम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता तमेव धम्मियं जाणप्पवरं दुरुहइ, दुरुहित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया। तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ पोलासपुराओ णयराओ सहस्संबवणाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

अर्थ— तब अग्निमित्राभार्या ने पाँच अणुव्रत एवं सात शिक्षा-व्रत रूप श्रावक के बारह व्रत अंगीकार कर भगवान् को वन्दना-नमस्कार किया और रथ में बैठ कर जिस दिशा से आई, उसी दिशा में चली गई। अन्यदा कभी भगवान् महावीर स्वामी बाहर जनपद में विचरने लगे।

सकडाल को पुनः प्राप्त करने गोशालक आया

तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए जाए जाव अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ। तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे—एवं खलु सद्दालपुत्ते आजीवियसमयं वमित्ता समणाणं णिग्गंथाणं दिट्ठि पडिवण्णे तं गच्छामि णं सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं समणाणं णिग्गंथाणं दिट्ठि वामेत्ता पुणरवि आजीवियदिट्ठि गेण्हाविस्सए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता आजीवियसंघ-संपरिवुडे जेणेव पोलासपुरे णयरे जेणेव आजीवियसभा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आजीवियसभाए भंडगणिक्खेवं करेइ, करित्ता कइवएहिं आजीविएहिं सद्धिं जेणेव सद्दालपुत्ते समणोवासए तेणेव उवागच्छइ।

अर्थ— सकडालपुत्र श्रमणोपासक बन गए। वे जीव-अजीव के ज्ञाता यावत् साधु-साध्वियों को प्रासुक-एषणीय आहार-पानी प्रतिलाभित करते हुए रहने लगे। मंखलिपुत्र गोशालक को ज्ञात हुआ कि सकडालपुत्र आजीविकोपासक ने आजीविक मत का त्याग कर श्रमण-निर्ग्रंथों की दृष्टि स्वीकार करली है, तो उसने सोचा कि—मुझे जाना

चाहिए तथा सकडालपुत्र से जैनधर्म छुड़वा कर पुनः आजीविक मत में स्थिर करना चाहिए। वह अनेक आजीविक-मतियों के साथ पोलासपुर नगर में आया और 'आजीविक सभा' में भण्डोपकरण रख कर अपने शिष्यों सहित सकडालपुत्र श्रमणोपासक के निकट आया।

सकडालपुत्र ने गोशालक को आदर नहीं दिया

तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए गोसालं मंखलिपुत्तं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता णो आढाइ णो परिजाणइ अणाढायमाणे अपरिजाणमाणे तुसिणीए संचिट्ठइ। तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सद्दालपुत्तेणं समणोवासएणं अणाढाइज्जमाणे अपरिजाणिज्जमाणे पीढफलगसिज्जासंथारट्ठयाए समणस्स भगवओ महावीरस्स गुणकित्तणं करेमाणे सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी—

अर्थ— सकडालपुत्र श्रमणोपासक ने मंखलिपुत्र गोशालक को आते देखा, तो उस का आदर-सत्कार नहीं किया और चुपचाप बैठा रहा। सकडालपुत्र के उपेक्षाभाव को समझ कर पीठ-फलक-स्थान एवं शय्या की प्राप्ति के लिए गोशालक ने भगवान् महावीर स्वामी के गुणकीर्तन करते हुए सकडालपुत्र से इस प्रकार कहा।

स्वार्थी गोशालक भगवान् की प्रशंसा करता है

"आगए णं देवाणुप्पिया! इहं महामाहणे?" तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—"के णं देवाणुप्पिया! महामाहणे?" तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी—"समणे भगवं महावीरे महामाहणे।" "से केणट्ठेणं देवाणुप्पिया! एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे महामाहणे?" "एवं खलु सद्दालपुत्ता! समणे भगवं महावीरे महामाहणे उप्पण्णणाण-दंसणधरे जाव महियपूइए जाव तच्चकम्मसंपया" संपाउत्ते। से तेणट्ठेणं देवाणुप्पिया एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे महामाहणे।"

अर्थ— हे देवानुप्रिय ! क्या यहाँ 'महामाहन' आए थे ?"

सकडालपुत्र श्रमणोपासक ने पूछा—" हे देवानुप्रिय ! महामाहन कौन है ?"

गोशालक ने कहा—" श्रमण भगवान् महावीर स्वामी महामाहन हैं।"

सकडालपुत्र ने पूछा—" हे देवानुप्रिय ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को महामाहन किस कारण से कहते हो ?"

गोशालक ने कहा—" श्रमण भगवान् महावीर स्वामी महामाहन उत्पन्न ज्ञान-दर्शन के धारक, अरिहंत जिन-केवली यावत् तीन लोक के वंदनीय-पूजनीय हैं। अतः वे महामाहन हैं।

"आगए णं देवाणुप्पिया ! इहं महागोवे ?" "के णं देवाणुप्पिया ! महागोवे ?" "समणे भगवं महावीरे महागोवे !" "से केणट्ठेणं देवाणुप्पिया ! जाव महागोवे ?" " एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे संसाराडवीए बहवे जीवे नस्समाणे विणस्समाणे खज्जमाणे छिज्जमाणे भिज्जमाणे लुप्पमाणे विलुप्पमाणे धम्ममएणं दंडेणं सारक्खमाणे संगोवेमाणे णिव्वाणमहावाडं साहत्थि संपावेइ । से तेणट्ठेणं सद्दालपुत्ता एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे महागोवे ।"

अर्थ—हे देवानुप्रिय क्या यहाँ 'महागोप' आए थे ?

"महागोप कौन है ?"

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी महागोप हैं।

"भगवान् महागोप किस प्रकार हैं ?" सकडालपुत्र ने पूछा।

गोशालक ने कहा—"हे सकडालपुत्र ! संसार-अटवी में बहुत-से जीव सन्मार्ग से नष्ट हो रहे हैं, विनष्ट हो रहे हैं, मिथ्यात्वादि द्वारा खाए जा रहे हैं, छेदे जा रहे हैं, भेदे जा रहे हैं, उनका हरण किया जा रहा है, उन गायों के समान जीवों की धर्म रूपी दंडे से रक्षा कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी मुक्ति रूपी बाड़े में पहुँचाते हैं। अतः वे महान् ग्वाले के समान होने से महागोप कहे गए हैं।

"आगए णं देवाणुप्पिया! इहं महासत्थवाहे?" "के णं देवाणुप्पिया! महासत्थवाहे?" "सद्दालपुत्ता! समणे भगवं महावीरे महासत्थवाहे?" "से केणट्ठेणं०?" एवं खलु देवाणुप्पिया समणे भगवं महावीरे संसाराडवीए बहवे जीवे णस्समाणे विणस्समाणे जाव विलुप्पमाणे धम्ममएणं पंथेणं सारक्खमाणे० णिव्वाणमहापट्टणाभिमुहे साहत्थि संपावेइ, से तेणट्ठेणं सद्दालपुत्ता! एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे महासत्थवाहे।"

अर्थ—गोशालक ने पूछा—"हे देवानुप्रिय! क्या यहाँ 'महासार्थवाह' आए थे?"

प्रश्न—"कौन महासार्थवाह?"

'श्रमण भगवान् महावीर स्वामी महासार्थवाह हैं।'

"कैसे?"

गोशालक ने कहा—"हे सकडालपुत्र! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी संसार-अटवी में भटकते हुए, नष्ट होते हुए यावत् विलुप्त होते हुए जीवों को धर्म रूपी मार्ग दिखा कर भली प्रकार से रक्षण करते हैं, तथा निर्वाण रूप महानगर में पहुँचाते हैं। अतः श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को मैं महासार्थवाह कहता हूँ।

"आगए णं देवाणुप्पिया! इहं महाधम्मकही?" "के णं देवाणुप्पिया! महाधम्मकही?" "समणे भगवंमहावीरे महाधम्मकही?" "से केणट्ठेणं समणे भगवं महावीरे महाधम्मकही?" "एवं खलु देवाणुप्पिया समणे भगवं महावीरे महइमहालयंसि संसारंसि बहवे जीवे णस्समाणे विणस्समाणे खज्जमाणे छिज्जमाणे भिज्जमाणे लुप्पमाणे विलुप्पमाणे उम्मग्गपडिवण्णे सप्पहविप्पणट्ठे मिच्छत्तबलाभिभूए अट्ठविहकम्मतमपडलपडोच्छण्णे बहूहिं अट्ठेहि य जाव वागरणेहि य चाउरंताओ संसार-कंताराओ साहत्थि णित्थारेइ, से तेणट्ठेणं देवाणुप्पिया! एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे महाधम्मकही।"

अर्थ—"हे सकडालपुत्र! क्या यहाँ 'महाधर्मकथी' आए थे?"

"कौन महाधर्मकथी?"

"श्रमण भगवान् महावीर स्वामी महाधर्मकथी हैं।"

"किस प्रकार ?"

गोशालक उत्तर देता है—"अगाध संसार में बहुत-से जीव नष्ट होते हैं, खेदित होते हैं, छेदित होते हैं, भेदित होते हैं, लुप्त होते हैं, विलुप्त होते हैं, उन्मार्ग में प्रवृत्त होते हैं, सन्मार्ग से भ्रष्ट होते हैं, मिथ्यात्व से पराभूत होते हैं और आठ कर्म रूप महा अंधकार के समूह से आच्छादित होते हैं। उन संसारी जीवों को श्रमण भगवान् महावीर स्वामी धर्मोपदेश दे कर, अर्थ समझा कर, हेतु बता कर, प्रश्न का उत्तर दे कर तथा शंका-शल्य मिटा कर चतुर्गति रूप संसार-अटवी से स्वयं पार पहुँचाते हैं। इसलिए हे सकडालपुत्र ! मैं श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को महाधर्मकथी कहता हूँ।"

"आगए णं देवाणुप्पिया ! इहं महाणिज्जामए ?" "के णं देवाणुप्पिया ! महाणिज्जामए ?" "समणे भगवं महावीरे महाणिज्जामए ?" "से केणट्ठेणं० ?" "एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे संसारमहासमुद्दे बहवे जीवे णस्समाणे विणस्समाणे जाव विलुप्पमाणे बुडुमाणे णिबुड्डमाणे उप्पियमाणे धम्म-मईए णावाए णिव्वाणतीराभिमुहे साहत्थि संपावेइ। से तेणट्ठेणं देवाणुप्पिया ! एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे महाणिज्जामए ?"

अर्थ—गोशालक फिर पूछता है—"हे देवानुप्रिय ! यहाँ 'महान् निर्यामक' आए थे ?"

'कौन महानिर्यामक ?'

'श्रमण भगवान् महावीर स्वामी महान् निर्यामक हैं।'

सकडालपुत्र पूछते हैं—"किस प्रकार महान् निर्यामक हैं ?"

गोशालक कहता है—"संसार एक महान् दुस्तर समुद्र है। इसमें संसारी जीव नष्ट हो रहे हैं, विनष्ट हो रहे हैं, यावत् डूब रहे हैं, जन्म-मरण रूपी गोते लगा रहे हैं, ऐसे डूबते जीवों को श्रमण भगवान् महावीर स्वामी धर्मरूपी नाव में बिठा कर स्वयं निर्वाण रूपी तीर तक पहुँचाते हैं। अतः उन्हें मैं महान् धर्म-निर्यामक (बड़े जहाज को चलाने वाले, खेवैया, नाविक) कहता हूँ।"

मैं भगवान् से विवाद नहीं कर सकता

तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—"तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! इयच्छेया जाव इयणिउणा इयणयवादी इयउवएसलद्धा इयविण्णाणपत्ता । पभू णं तुब्भे मम धम्मायरिएणं धम्मोवएसएणं भगवया महावीरेणं सद्धिं विवादं करेत्तए ?" "णो तिणट्ठे समट्ठे ।"

अर्थ—तब सकडालपुत्र ने मंखलिपुत्र गोशालक से कहा कि "हे देवानुप्रिय ! जब आप इतने दक्ष, चतुर, निपुण नयवादी, प्रसिद्ध वक्ता एवं विज्ञानवाले हैं, तो क्या आप श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के साथ शास्त्रार्थ कर सकते हैं ?"

गोशालक ने उत्तर दिया—"नहीं, मैं भगवान् से विवाद नहीं कर सकता । मैं असमर्थ हूँ ।"

"से केणट्ठेणं देवाणुप्पिया ! एवं वुच्चइ—णो खलु पभू तुब्भे मम धम्मायरिएणं जाव महावीरेणं सद्धिं विवादं करेत्तए ?" "सद्दालपुत्ता ! से जहाणामए केइ पुरिसे तरुणे जुगवं जाव णिउणसिप्पोवगए एगं महं अयं वा एलयं वा सूयरं वा कुक्कुडं वा तित्तिरं वा वट्टयं वा लावयं वा कवोयं वा कविंजलं वा वायसं वा सेणयं वा हत्थंसि वा पायंसि वा खुरंसि वा पुच्छंसि वा पिच्छंसि वा सिंगंसि वा विसाणंसि वा रोमंसि वा जहिं जहिं गिण्हइ तहिं तहिं णिच्चलं णिप्फंदं धरेइ । एवामेव समणे भगवं महावीरे मम बहूहिं अट्ठेहि य हेऊहि य जाव वागरणेहि य जहिं जहिं गिण्हइ तहिं तहिं णिप्पट्ठपसिणवागरणं करेइ । से तेणट्ठेणं सद्दालपुत्ता ! एवं वुच्चइ—णो खलु पभू अहं तव धम्मायरिएणं जाव महावीरेणं सद्धिं विवादं करेत्तए ।"

अर्थ—सकडालपुत्र ने पूछा—"हे देवानुप्रिय ! आप श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से विवाद क्यों नहीं कर सकते ?"

गोशालक ने उत्तर दिया—"हे सकडालपुत्र ! जैसे कोई चतुर शिल्प-कला का

ज्ञाता युवक पुरुष किसी बकरे को, मेंढे को, सूअर, मुर्गे, तीतर, बटेर, लावक, कबूतर, कपिंजल, कौए अथवा बाज का हाथ, पाँव, खुर, पूँछ, पंख, सींग या रोम, इनमें से जो भी अंग पकड़ता है, तो वह लेश-मात्र भी हिल-डुल नहीं सकता। इसी प्रकार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी भी मुझे अर्थ, हेतु, व्याकरण आदि द्वारा जहाँ-जहाँ पकड़ें, वहाँ-वहाँ मैं निरुत्तर हो जाऊँ। इसलिए ऐसा कहा कि मैं श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से शास्त्रार्थ करने में असमर्थ हूँ।

मैं तुम्हें धर्म के उद्देश्य से स्थान नहीं देता

तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी— "जम्हा णं देवाणुप्पिया! तुब्भे मम धम्मायरियस्स जाव महावीरस्स संतेहिं तच्चेहिं तहिएहिं सब्भूएहिं भावेहिं गुणकित्तणं करेह तम्हा णं अहं तुब्भे पाडिहारिएणं पीढ जाव संथारएणं उवणिमंतेमि। णो चेव णं धम्मोत्ति वा तवोत्ति वा। तं गच्छह णं तुब्भे मम कुंभारावणेसु पाडिहारियं पीढ-फलग जाव ओगिण्हित्ताणं विहरह।"

अर्थ—सकडालपुत्र ने कहा—"हे मंखलिपुत्र गोशालक! आपने मेरे धर्मोपदेशक धर्माचार्य श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का सत्य, तथ्य, सद्भूत भावों का यथार्थ गुण-कीर्तन किया, अतः मैं प्रातिहारिक पीठ-फलक आदि का निमंत्रण करता हूँ। परन्तु मैं इसमें धर्म या तप मान कर देता हूँ, ऐसी बात नहीं है। आप जाइए तथा मेरी दुकानों से इच्छित पीठ-फलक आदि ले कर सुख से रहिए।"

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सद्दालपुत्तस्स समणोवासयस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता कुंभारावणेसु पाडिहारियं पीढ जाव ओगिण्हित्ताणं विहरइ। तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सद्दालपुत्तं समणोवासयं जाहे णो संचाएइ बहूहिं आघवणाहि य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य णिग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा ताहे संते तंते परितंते

पोलासपुराओ णयराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

अर्थ— गोशालक उन दुकानों से पाट-पाटले शय्या आदि ग्रहण कर रहने लगा। भाँति-भाँति के सामान्य वचनों, विशेष वचनों, अनुकूल वचनों एवं प्रतिकूल वचनों से भी जब वह सकडालपुत्र को निर्ग्रंथ-प्रवचन से चलित नहीं कर सका, क्षुभित नहीं कर सका, मन-परिणामों से भी विचलित नहीं कर सका, तो थक कर, खेदित हो कर, पोलासपुर से बाहर जनपद में विचरने लगा।

देवोपसर्ग

तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स समणोवासयस्स बहूहिं सील० जाव भावेमाणस्स चोद्दस संवच्छरा वइक्कंता। पण्णरसमस्स संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स पुव्वरत्तावरत्तकाले जाव पोसहसालाए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स समणोवासयस्स पुव्वरत्तावरत्तकाले एगे देवे अंतिअं पाउब्भवित्था। तए णं से देवे एगं महं नीलुप्पल जाव असिं गहाय सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी—जहा चुलणीपियस्स तहेव देवो उवसग्गं करेइ। णवरं एक्केक्के पुत्ते णव मंससोल्लए करेइ जाव कणीयसं घाएइ, घाएइत्ता जाव आयंचइ। तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए अभीए जाव विहरइ।

अर्थ— बहुत-से अणुव्रतों, गुणव्रतों आदि से आत्मा को भावित करते हुए सकडालपुत्र को चौदह वर्ष बीत गए। पन्द्रहवें वर्ष में किसी दिन वे पौषधशाला में भगवान् की धर्म-विधि की आराधना कर रहे थे। आधीरात के समय एक देव आया और नीलकमल के समान खड्ग ले कर कहने लगा—"यदि तू धर्म से विचलित नहीं होगा, तो तेरे तीनों पुत्रों के खण्ड-खण्ड कर, उकलते तेल में तल कर तेरे शरीर पर छिड़कूंगा सारा वर्णन चूलणीपिता के समान है। विशेषता यह है कि एक-एक पुत्र के नौ-नौ टुकड़े किए यावत् सकडालपुत्र निर्भय रह कर धर्माराधना करते रहे।

तए णं से देवे सद्दालपुत्तं समणोवासयं अभीयं जाव पासित्ता चउत्थंपि सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी—"हं भो सद्दालपुत्ता समणोवासया! अपत्थियपत्थिया जाव ण भंजसि तओ ते जा इमा अग्गिमित्ता भारिया धम्मसहाइया धम्मविइज्जिया धम्माणुरागरत्ता समसुहदुक्खसहाइया तं ते साओ गिहाओ णीणेमि, णीणित्ता तव अग्गओ घाएमि घाइत्ता णव मंससोल्लए करेमि, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि अद्दहित्ता तव गायं मंसेण य सोणिएण य आयंचामि। जहा णं तुमं अट्टदुहट्ट जाव ववरोविज्जसि। तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरइ।

अर्थ—सकडालपुत्र को निर्भय जान कर चौथी बार देव ने कहा—"हे सकडालपुत्र! मृत्यु की इच्छा वाले! यदि तू शीलव्रत गुणव्रत का परित्याग नहीं करेगा, तो तेरी भार्या अग्निमित्रा जो तेरे लिए धर्म-सहायिका, धर्मानुरागिणी, सुख-दुःख में समान सहायिका है, उसे तेरे घर से ला कर तेरे सामने मार कर उसके नौ मांस खण्ड करूंगा, तथा उकलते हुए कड़ाह में डाल कर तेरे शरीर पर छिड़कूंगा जिससे तू आर्त्तध्यान करता हुआ अकाल में ही मृत्यु को प्राप्त होगा।" ऐसा कहने पर भी सकडालपुत्र निर्भय रहे।

तए णं से देवे सद्दालपुत्तं समणोवासयं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी—हं भो सद्दालपुत्ता समणोवासया तं चेव भणइ। तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स समणोवासयस्स तेणं देवेणं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्तस्स समाणस्स अयं अज्झत्थिए ४ समुप्पण्णे। एवं जहा चूलणीपिया तहेव चिंतेइ जेणं ममं जेट्ठं पुत्तं जेणं ममं मज्झिमयं पुत्तं जेणं ममं कणीयसं पुत्तं जाव आयंचइ, जाऽवि य णं ममं इमा अग्गिमित्ता भारिया समसुहदुक्खसहाइया तं पि य इच्छइ साओ गिहाओ णीणेत्ता ममं अग्गओ घाएत्तए। तं सेयं खलु मम एयं पुरिसं गिण्हित्तए त्ति कट्टु उद्धाइए। जहा चूलणीपिया तहेव सव्वं भाणियव्वं। णवरं अग्गिमित्ता भारिया कोलाहलं सुणित्ता भणइ। सेसं जहा चुलणीपियावत्तव्वया। णवरं अरुणभूए विमाणे उववण्णे जाव महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ। णिक्खेवओ॥

॥ सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं सत्तमं अज्झयणं समत्तं॥

अर्थ—उस देव ने दूसरीबार-तीसरीबार उपरोक्त वचन कहे तब सकडालपुत्र श्रमणोपासक को यह सुन कर विचार हुआ कि निश्चय ही यह कोई अनार्य—दुष्ट पुरुष है, जिसने पहले मेरे ज्येष्ठ पुत्र को फिर मंझले पुत्र को और फिर छोटे पुत्र को मेरे सामने मारा, नौ-नौ मांस-खण्ड किए, तथा उन्हें मेरे शरीर पर छिड़क कर वेदना उत्पन्न की। अब यह मेरी धर्मसहायिका अग्निमित्रा भार्या को मार कर उसके नौ मांस-खण्ड कर मुझ पर छिड़कना चाहता है। अतः मेरे लिए उचित है कि इसे पकड़ लूं।' ऐसा सोच कर ज्योंही पकड़ना चाहा, देव उड़ गया, और खंभा ही हाथ आया। सकडालपुत्र ने कोलाहल किया, अग्निमित्रा भार्या ने उन्हें वस्तु-स्थिति समझाई, तथा प्रायश्चित्त दे कर शुद्ध किया। शेष सारा वर्णन चूलणीपिता के समान जानना चाहिए। विशेष यह कि संलेखना संथारा कर के सौधर्म नामक प्रथम देवलोक के अरुणभूत विमान में उत्पन्न हुए। चार पल्योपम की स्थिति का उपभोग कर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्ध-बुद्ध एवं मुक्त बनेंगे।

॥ सप्तम अध्ययन समाप्त ॥

अष्टम अध्ययन

श्रमणोपासक महाशतक

अट्ठमस्स उक्खेवओ। एवं खलु जम्बू! तेणं काले णं तेणं समएणं रायगिहे णयरे, गुणसीले चेइए, सेणिए राया। तत्थ णं रायगिहे महासयए णामं गाहावई परिवसइ। अड्ढे जहा आणंदो। णवरं अट्ठ हिरण्णकोडीओ संकसाओ णिहाणपउत्ताओ, अट्ठ हिरण्णकोडीओ संकसाओ वुड्ढिपउत्ताओ, अट्ठ हिरण्णकोडीओ संकसाओ पवित्थरपउत्ताओ, अट्ठ वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं। तस्स णं महासयगस्स, रेवईपामोक्खाओ तेरस भारियाओ होत्था। अहीण जाव सुरूवाओ। तस्स णं महासयगस्स रेवईए भारियाए कोलघरियाओ अट्ठ हिरण्णकोडीओ अट्ठ वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं होत्था, अवसेसाणं दुवालसण्हं भारियाणं कोलघरिया एगमेगा हिरण्णकोडी एगमेगे य वए दसगोसाहस्सिएणं वए णं होत्था।

अर्थ—आठवें अध्ययन के प्रारम्भ में जंबू स्वामी के पूछने पर आर्य सुधर्मा स्वामी फरमाते हैं—"हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विद्यमान थे, तब राजगृह नगर के बाहर गुणशील उद्यान था। श्रेणिक राजा राज्य करते थे। राजगृह में 'महाशतक' नामक गाथापति रहता था। जो आनन्द की भांति आढ्य यावत् अपराभूत था। उसके पास आठ करोड़ स्वर्ण मुद्राओं का धन निधान-प्रयुक्त था, आठ करोड़ व्यापार में तथा आठ करोड़ की घरबिखरी थी। दस हजार गायों का एक व्रज, ऐसे आठ व्रज प्रमाण पशु-धन था। उन महाशतकजी के रेवतीप्रमुख तेरह पत्नियां थीं। रेवती के पीहर वालों ने रेवती को प्रीतिदान में आठ करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ एवं गायों के आठ व्रज दिए थे।

शेष बारह भार्याओं के पीहर वालों से एक-एक करोड़ स्वर्ण-मुद्रा तथा दस हजार गायों का एक-एक व्रज दिया था।

विवेचन— संकसाओ शब्द का अर्थ टीका में—'**संकसाओ' त्ति कांस्येन द्रव्यमानविशेषेण सहिताः सकांस्याः**' किया है। अर्थ में लिखा है द्रव्य नापने का कांस्य नाम का पात्र विशेष, जिसमें बत्तीस सेर धान समा सकता है। पूज्यश्री अमोलकऋषिजी म. सा. ने 'संकसाओ' का अर्थ नहीं किया है। 'कोलघरियाओ' का अर्थ है—'पीहर से।'

तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे, परिसा णिग्गया, जहा आणंदो तहा णिग्गच्छइ, तहेव सावयधम्मं पडिवज्जइ। णवरं अट्ठ हिरण्णकोडीओ संकसाओ उच्चारेइ। अट्ठ वया, रेवईपामोक्खाहिं तेरसहिं भारियाहिं अवसेसं मेहुणविहिं पच्चक्खाइ। सेसं सव्वं तहेव। तए णं से एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ कल्ला-कल्लिं च णं कप्पइ मे बे दोणियाए कंसपाईए हिरण्णभरियाए संववहरित्तए। तए णं से महासयए समणोवासए जाए अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ। तए णं समणे भगवं महावीरे बहिया जणवयविहारं विहरइ।

अर्थ— उस समय राजगृह नगर के गुणशील उद्यान में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ। परिषद् धर्मकथा सुनने के लिए गई, आनन्दजी की भाँति महाशतकजी ने श्रावक के बारह व्रत स्वीकार किए। विशेष यह कि आठ करोड़ भण्डार में, आठ करोड़ व्यापार में और आठ करोड़ की घरबिखरी। गौओं के आठ व्रज का परिमाण किया। रेवती आदि तेरह पत्नियों के अतिरिक्त शेष मैथुन का प्रत्याख्यान किया। तथा यह अभिग्रह लिया कि "मैं कल से नित्य दो द्रोण कांस्यपात्र भरे (एक द्रोण सोलह सेर के लगभग होता है, इस प्रकार बत्तीस सेर) सोने से अधिक का व्यापार नहीं करूँगा।" व्रत धारण करने से महाशतक 'श्रमणोपासक' हो गए। वे जीव-अजीव को जानने वाले यावत् साधु-साध्वियों को प्रासुक-एषणीय आहार-पानी बहराने वाले हो गए। तत्पश्चात् कभी भगवान् जनपद में विचरने लगे।

कामासक्त रेवती की नृशंस योजना

तए णं तीसे रेवईए भारियाए गाहावइणीए अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्त-कालसमयंसि कुडुंब जाव इमेयारूवे अज्झत्थिए ४—एवं खलु अहं इमासिं दुवालसण्हं सवत्तीणं विघाएणं णो संचाएमि महासयएणं समणोवासएणं सद्धिं उरालाइं माणुस्सयाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरित्तए। तं सेयं खलु ममं एयाओ दुवालसवि सवत्तियाओ अग्गिप्पओगेणं वा सत्थप्पओगेणं वा विसप्पओगेणं वा जीवियाओ ववरोवित्ता एयासिं एगमेगं हिरण्णकोडिं एगमेगं वयं सयमेव उवसंपज्जित्ताणं महासयएणं समणोवासएणं सद्धिं उरालाइं जाव विहरित्तए। एवं संपेहेइ, संपेहित्ता तासिं दुवालसण्हं सवत्तीणं अंतराणि य छिद्दाणि य विवराणि य पडिजागरमाणी विहरइ।

अर्थ—एकबार मध्य-रात्रि के समय रेवती गाथापत्नी को कुटुम्ब जागरणा करते हुए विचार हुआ कि "इन बारह सौतों के कारण मैं महाशतक श्रमणोपासक के साथ यथेच्छ कामभोग नहीं भोग सकती। अतः मेरे लिए यह उचित होगा कि इन बारह ही सौतों को अग्निप्रयोग से, शस्त्र द्वारा या विष द्वारा जीवन-रहित कर दूँ और इनका एक-एक करोड़ स्वर्ण तथा गोव्रज अपने अधीन कर के महाशतक के साथ निर्विघ्न मानवीय कामभोगों का उपभोग करूँ।" ऐसा मनोसंकल्प कर के रेवती उन बारह सौतों के छिद्रान्वेषण करने लगी।

रेवती ने सपत्नियों की हत्या कर दी

तए णं सा रेवई गाहावइणी अण्णया कयाइ तासिं दुवालसण्हं सवत्तीणं अंतरं जाणित्ता छ सवत्तीओ सत्थप्पओगेणं उद्दवेइ, उद्दवेत्ता छ सवत्तीओ विसप्पओगेणं उद्दवेइ उद्दवेत्ता तासिं दुवालसण्हं सवत्तीणं कोलघरियं एगमेगं हिरण्णकोडिं एगमेगं वयं सयमेव पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता महासयएणं समणोवासएणं सद्धिं उरालाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ।

अर्थ— रेवती गाथापत्नी ने अवसर देख कर अपनी बारह सौतों को मारने का ठान लिया। उसने अपनी छः सौतों को शस्त्र प्रयोग से तथा छः सौतों को विष दे कर मार डाला और उनका बारह करोड़ का धन तथा बारह व्रज अपने अधीन कर लिए। अब वह अकेली ही महाशतक के साथ ऐन्द्रिक सुख भोगने लगी।

तए णं सा रेवई गाहावइणी मंसलोलुया मंसेसु मुच्छिया गिद्धा गढिया अज्झोववण्णा बहुविहेहिं मंसेहिं य सोल्लेहि य तलिएहि य भज्जिएहि य सुरं च महुं च मेरगं च मज्जं सीधुं च पसण्णं च आसाएमाणी विसाएमाणी परिभाए-माणी परिभुंजेमाणी विहरइ।

अर्थ—रेवती मांस-लोलुप बन गई। मांसाहार के बिना उसे चैन नहीं मिलता था। मांस के टुकड़े-टुकड़े कर वह उन्हें तल-भुन कर और मसाले मिला कर कई प्रकार की मदिराओं के साथ स्वाद ले कर बार-बार खाने लगी।

अमारि घोषणा और रेवती का पाप

तए णं रायगिहे णयरे अण्णया कयाइ अमाघाए घुट्टे यावि होत्था। तए णं सा रेवई गाहावइणी मंसलोलुया मंसेसु मुच्छिया ४ कोलघरिए पुरिसे सद्दावेइ सद्दावेत्ता एवं वयासी—"तुब्भे देवाणुप्पिया! मम कोलघरिएहिंतो वएहिंतो कल्ला-कल्लिं दुवे दुवे गोणपोयए उद्दवेइ उद्दवेत्ता ममं उवणेह।" तए णं ते कोलघरिया पुरिसा रेवईए गाहावइणीए तहत्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणंति पडिसुणित्ता रेवईए गाहावइणीए कोलघरिएहिंतो वएहिंतो कल्लाकल्लिं दुवे दुवे गोणपोयए वहेंति, वहेत्ता रेवइए गाहावइणीए उवणेंति। तए णं सा रेवई गाहावइणी तेहिं गोणमंसेहिं सोल्लेहि य ४ सुरं च ६ आसाएमाणी ४ विहरइ।

अर्थ— एकबार राजगृह नगर में (महाराजा श्रेणिक ने) 'अमारि-घोषणा की। फलतः पशु-वध बन्द हो जाने से रेवती को मांसाहार में बाधा खड़ी हो गई। तब पीहर से साथ आए नौकर से उसने कहा कि "तुम मेरे पीहर से प्राप्त गो व्रजों में से प्रतिदिन गाय के

दो बछड़े मार कर लाया करो।" वह कर्मचारी प्रतिदिन दो बछड़ों को मार कर उनका मांस रेवती को देने लगा। रेवती मांस-मदिरा का प्रचुर सेवन करने लगी।

रेवती पति को मोहित करने गई

तए णं तस्स महासयगस्स समणोवासगस्स बहूहिं सील जाव भावे· माणस्स चोद्दस संवच्छरा वइक्कंता। एवं तेहेव जेट्ठं पुत्तं ठवेइ जाव पोसहसालाए धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तए णं सा रेवई गाहावइणी मत्ता लुलिया विइण्णकेसी उत्तरिज्जयं विकड्ढमाणी विकड्ढमाणी जेणेव पोसहसाला जेणेव महासयए समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मोहुम्मायजणणाइं सिंगा· रियाइं इत्थिभावाइं उवदंसेमाणी उवदंसेमाणी महासययं समणोवासयं एवं वयासी—"हं भो महासयया समणोवासया! धम्मकामया पुण्णकामया सग्ग- कामया मोक्खकामया धम्मकंखिया ४, धम्मपिवासिया ४, किण्णं तुब्भं देवाणु- प्पिया! धम्मेण वा पुण्णेण वा सग्गेण वा मोक्खेण वा? जण्णं तुमं मए सद्धिं उरालाइं जाव भुंजमाणे णो विहरसि?"

अर्थ—महाशतक श्रमणोपासक को श्रावक-व्रतों का निर्मल पालन कर के आत्मा को भावित करते हुए चौदह वर्ष बीत गए। तत्पश्चात् आनन्दजी की भाँति उन्होंने भी ज्येष्ठ-पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंपा और पौषधशाला में जा कर भगवान् की धर्मप्रज्ञप्ति स्वीकार कर ली। एकबार रेवती भार्या उन्मत्त बनी हुई, मदिरा पीने के कारण स्खलित गति वाली, केश बिखरे हुए, ओढ़नी से सिर ढके बिना ही उस महाशतक श्रमणोपासक के समीप आई और कामोद्दीपन करने वाले श्रृंगारयुक्त मोहक वचन कहने लगी—

"अरे हे महाशतक श्रमणोपासक! तुम धर्म, पुण्य, स्वर्ग और मोक्ष के कामी हो, आकांक्षी हो, धर्म-पुण्य एवं मोक्ष प्राप्ति के पिपासु हो, परन्तु तुम्हें धर्म, पुण्य, स्वर्ग या मोक्ष से क्या प्रयोजन है? तुम मेरे साथ कामभोग क्यों नहीं भोगते? अर्थात् भावी सुख की कल्पना में प्राप्त वैषयिक सुख की उपेक्षा क्यों कर रहे हो?"

विवेचन— रेवती का महाशतक से कहने का आशय यह है कि—तुम धर्मसाधना कर रहे हो, वह भविष्य में स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त होने वाले सुख की कल्पना से कर रहे हो। परन्तु भावी सुख की मिथ्या कामना से वर्त्तमान सुख को त्यागना नहीं चाहिए। छोड़ो इस साधना को और चलो मेरे साथ। मैं तुम्हें सभी सुख दूंगी।

तए णं से महासयए समणोवासए रेवईए गाहावइणीए एयमट्ठं णो आढाइ णो परियाणाइ अणाढाइज्जमाणे अपरियाणमाणे तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ। तए णं सा रेवई गाहावइणी महासययं समणोवासयं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी—हं भो! तं चेव भणइ! सोऽवि तहेव जाव अणाढाइज्जमाणे अपरियाणमाणे विहरइ। तए णं सा रेवई गाहावइणी महासयएणं समणोवासएणं अणाढाइज्जमाणी अपरियाणिज्जमाणी जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

अर्थ—रेवती गाथापत्नी के उपरोक्त वचन महाशतक श्रमणोपासक ने स्वीकार नहीं किया, मन से भी चाहना नहीं की और चुपचाप धर्माराधना में रत रहे। रेवती ने यह बात दो-तीन बार कही, तब भी वह चुपचाप रहा। महाशतक से उपेक्षित हो कर रेवती अपने स्थान चली गई।

तए णं से महासयए समणोवासए पढमं उवासगपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। पढमं अहासुत्तं जाव एक्कारसऽवि। तए णं से महासयए समणोवासए तेणं उरालेणं जाव किसे धमणिसंतए जाए। तए णं तस्स महासययस्स समणोवासयस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकाले धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयं अज्झत्थिए ४ एवं खलु अहं इमेणं उरालेणं जहा आणंदो तहेव अपच्छिममारणंतियसंलेहणाझूसियसरीरे भत्तपाणपडियाइक्खिए कालं अणवकंखमाणे विहरइ।

अर्थ— महाशतकजी ने प्रथम उपासक-प्रतिमा की यथावत् आराधना की। इस प्रकार ग्यारह उपासक-प्रतिमाओं का सम्यग् पालन किया। कठोर तपश्चर्या के कारण महाशतक का शरीर अस्थि और शिराओं का जाल मात्र रह गया। एकबार धर्म जागरणा करते हुए उन्हें विचार हुआ कि अब शरीर बहुत कृश हो गया है, अतः मुझे अपश्चिम-मारणांतिक संलेखना-संथारा करना उचित है। उन्होंने संथारा कर लिया।

तए णं तस्स महासयगस्स समणोवासगस्स सुभेणं अज्झवसाणेणं जाव खओवसमेणं ओहिणाणे समुप्पण्णे पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दे जोयणसाहस्सियं खेत्तं जाणइ-पासइ। एवं दक्खिणेणं पच्चत्थिमेणं, उत्तरेणं जाव चुल्लहिमवंतं वासहरपव्वयं जाणइ-पासइ। अहे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए लोलुयच्चुयं णरयं चउरासीइवाससहस्सट्ठिइयं जाणइ-पासइ।

अर्थ—संथारे में शुभअध्यावसायों और तथारूप कर्म का क्षयोपशम होने से महाशतकजी को अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ। इससे वे पूर्व, दक्षिण और उत्तर दिशा में लवणसमुद्र का एक हजार योजन का क्षेत्र जानने-देखने लगे, उत्तर-दिशा में चुल्लहिमवंत वर्षधर पर्वत तक का क्षेत्र जानने-देखने लगे। अधो-दिशा में वे चौरासी हजार वर्ष स्थिति वाले नैरयिकों के निवास-स्थान तक का प्रथम नरक का लोलुयच्चुय नरकावास देखने लगे।

तू दुखी होकर नरक में जाएगी

तए णं सा रेवई गाहावइणी अण्णया कयाइ मत्ता जाव उत्तरिज्जयं विकड्ढेमाणी विकड्ढेमाणी जेणेव महासयए समणोवासए जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता महासययं तहेव भणइ जाव दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी—हं भो! तए णं से महासयए समणोवासए रेवईए गाहावइणीए दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते ४ ओहिं पउंजइ, पउंजित्ता ओहिणा आभोएइ, आभोइत्ता रेवइं गाहावइणिं एवं वयासी—"हं भो रेवई! अपत्थियपत्थिए ४! एवं खलु तुमं अंतो सत्तरत्तस्स अलसएणं वाहिणा अभिभूया समाणी अट्टदुहट्टवसट्टा असमाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा अहे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए लोलुयच्चुए णरए चउरासीइवाससहस्सट्ठिइएसु णेरइएसु णेरइयत्ताए उववज्जिहिसि।"

अर्थ—महाशतकजी को अवधिज्ञान होने के बाद एक दिन रेवती गाथापत्नी कामवासना में उन्मत्त हो कर निर्लज्जतापूर्ण वस्त्र गिराती हुई यावत् पौषधशाला में आई और पूर्वोक्त रीति से कहने लगी। दूसरी-तीसरी बार रेवती के द्वारा कामोत्पादक वचन

सुन कर महाशतक को क्रोध आ गया। उन्होंने अवधिज्ञान से उपयोग लगाया और अवधिज्ञान से उसका आगामी भव देख कर कहने लगे—"अरे हे रेवती! जिसको कोई चाहना नहीं करता, उस मौत को तू चाहने वाली है, यावत् तुझे वचन-विवेक भी नहीं रहा। तू निश्चय ही आज से सातवीं रात्रि में अलस रोग से आर्त्तध्यान युक्त हो कर असमाधिपूर्वक काल कर के पहली नरक के लोलुयच्चुय नरकावास में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति वाले नैरयिक के रूप में जन्म लेगी।"

तए णं सा रेवई गाहावइणी महासयएणं समणोवासएणं एवं वुत्ता समाणी एवं वयासी—"रुट्ठे णं ममं महासयए समणोवासए हीणे णं मम महासयए समणोवासए अवज्झाया णं अहं महासयएणं समणोवासएणं ण णज्जइ णं अहं केणवि कुमारेणं मारिज्जिस्सामि त्ति कट्टु भीया तत्था तसिया उव्विग्गा संजाय-भया सणियं सणियं पच्चोसक्कइ पच्चोसक्कित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवा-गच्छइ, उवागच्छित्ता ओहय जावज्झियाइ। तए णं सा रेवई गाहावइणी अंतो सत्तरत्तस्स अलसएणं वाहिणा अभिभूया अट्टदुहट्टवसट्टा कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए लोलुयच्चुए णरए चउरासीइवाससहस्सट्ठिइएसु णेरइ-एसु णेरइयत्ताए उववण्णा।"

अर्थ—यह बात सुन कर रेवती को विचार हुआ कि "निश्चय ही महाशतक श्रमणोपासक मुझ पर रुष्ट हो गए हैं। उनके मन में मेरे प्रति हीनभाव हो गए हैं। मैं उन्हें अच्छी नहीं लगती। अतः मैं नहीं जानती कि वे मुझे न जाने किस कुमौत से मारेंगे?" ऐसा सोच कर वह भयभीत हो गई, नरक दुःखों के श्रवण से उद्विग्न हो गई और त्रास को प्राप्त हुई। वह धीरे-धीरे पौषधशाला से निकल कर अपने स्थान पर आई, तथा आर्त्तध्यान करने लगी। सातवें दिन अलसक—विशूचिका से पीड़ित होकर आर्त्तध्यान करती हुई असमाधिपूर्वक मर कर रत्नप्रभा पृथ्वी के लोलुयच्चुय नरकावास में, चौरासी हजार वर्ष की स्थिति वाले नैरयिक के रूप में उत्पन्न हुई।

विवेचन— नोर्ध्वं व्रजति नाधस्ताद्आहारो न च पच्यते।
आमाशयेऽलसीभूतस्तेन सोऽलसकः स्मृतः॥

—खाया हुआ आहार न तो ऊँचा जाता है और न नीचा जाता है, और न पचता है, किन्तु आमाशय में आलसी हो कर पड़ा रहता है, उसे 'अलसक' रोग कहते हैं। विसूचिका भी कहते हैं।

भगवान् गौतमस्वामी को भेजते हैं

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसरणं जाव परिसा पडिगया। "गोयमाइ" समणे भगवं महावीरे एवं वयासी—"एवं खलु गोयमा! इहेव रायगिहे णयरे ममं अंतेवासी महासयए णामं समणोवासए पोसहसालाए अपच्छिममारणंतियसंलेहणाए झूसियसरीरे भत्तपाणपडियाइक्खिए कालं अणवकंखमाणे विहरइ। तए णं तस्स महासयगस्स रेवई गाहावइणी मत्ता जाव विकड्ढेमाणी विकड्ढेमाणी जेणेव पोसहसाला जेणेव महासयए तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता मोहुम्माय जाव एवं वयासी—तहेव जाव दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी।

अर्थ—उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी राजगृह पधारे, परिषद धर्मोपदेश सुन कर लौट गई। भगवान् ने गौतमस्वामी से फरमाया—"हे गौतम! इस राजगृह नगर में मेरा अंतेवासी महाशतक श्रमणोपासक अपश्चिम-मारणांतिकीसंलेखना की आराधना कर रहा है। आहार-पानी की इच्छा न करते हुए तथा मृत्यु की आकांक्षा नहीं रखते हुए पौषधशाला में वह शरीर और कषायों को क्षीण कर रहा है। उसके पास एक दिन रेवती गाथापत्नी आई थी तथा मोह-उन्मादजनक वचन दो-तीन बार कहे थे।

तए णं से महासयए समणोवासए रेवइए गाहावइणीए दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्ते समाणे आसुरत्ते ४ ओहिं पउंजइ, पउंजित्ता ओहिणा आभोएइ, आभोइत्ता रेवइं गाहावइणिं एवं वयासी—जाव उववज्जिहिसि। णो खलु कप्पइ गोयमा! समणोवासगस्स अपच्छिम जाव झूसियसरीरस्स भत्तपाणपडियाइक्खियस्स परो-संतेहिं तच्चेहिं तहिएहिं सब्भूएहिं अणिट्ठेहिं अकंतेहिं अप्पिएहिं अमणुण्णेहिं अमणा-मेहिं वागरणेहिं वागरित्तए। तं गच्छ णं देवाणुप्पिया! तुमं महासययं समणोवासयं एवं वयासी—"णो खलु देवाणुप्पिया! कप्पइ समणोवासगस्स अपच्छिम जाव भत्त-

पाणपडियाइक्खियस्स परो संतेहिं जाव वागरित्तए। तुमे य णं देवाणुप्पिया! रेवई गाहावइणी संतेहिं ४ अणिट्ठेहिं ५ वागरणेहिं वागरिया। तं णं तुमं एयस्स ठाणस्स आलोएहि जाव जहारिहं च पायच्छित्तं पडिवज्जाहि।"

अर्थ—रेवती के वचन दो-तीन बार सुन कर महाशतक श्रमणोपासक कुपित हुआ। अवधिज्ञान में उपयोग लगा कर आगामी भव देखा तथा प्रथम नरक में उत्पन्न होवेगी यावत् वचन कहे। हे गौतम! अपश्चिममारणान्तिकी संलेखना स्वीकार कर मृत्यु की आकांक्षा और आहार की अभिलाषा नहीं रखने वाले श्रावक को सत्य, तथ्य, यथार्थ एवं सद्भूत होते हुए भी अप्रिय, अकान्त, अनिष्ट लगने वाले, मन को नहीं भाने वाले और मन को बुरे लगने वाले वचन कहना नहीं कल्पता है। अतः हे देवानुप्रिय गौतम! तुम महाशतक के समीप पौषधशाला में जाओ और उससे कहो कि "संलेखना में श्रावक को ऐसे वचन कहना नहीं कल्पता है। तुमने रेवती गाथापत्नी को सत्य बात भी अप्रिय-अनिष्ट आदि लगने वाली कही, अतः उस दोष-स्थान की आलोचना-प्रतिक्रमण कर यथायोग्य प्रायश्चित्त स्वीकार करो।

तए णं से भगवं गोयमे समणस्स भगवओ महावीरस्स "तहत्ति" एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता तओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता रायगिहं णयरं मज्झंमज्झेणं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव महासयगस्स समणोवासयस्स गिहे जेणेव महासयए समणोवासए तेणेव उवागच्छइ।

अर्थ—भगवान् का आदेश सुन कर गौतम स्वामी ने विनयपूर्वक स्वीकार किया और अपने स्थान से निकले तथा राजगृह नगर में प्रविष्ट होकर महाशतक श्रमणोपासक के घर पधारे।

महाशतक तुम प्रायश्चित्त लो

तए णं से महासयए भगवं गोयमं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठ जाव हियए भगवं गोयमं वंदइ णमंसइ। तए णं से भगवं गोयमे महासययं समणो-

वासयं एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे एवमाइक्खइ भासइ पण्णवेइ परूवेइ—'णो खलु कप्पइ देवाणुप्पिया ! समणोवासगस्स अपच्छिम जाव वागरित्तए ! तुमे णं देवाणुप्पिया ! रेवई गाहावइणी संतेहिं जाव वागरिया। तं णं तुमं देवाणुप्पिया ! एयस्स ठाणस्स आलोएहि जाव पडिवज्जाहि।"

अर्थ—भगवान् गौतम स्वामी को पधारते हुए देख कर महाशतक श्रमणोपासक का चित्त प्रीति से भर गया, हृदय हर्षित हुआ यावत् उसने प्रसन्न हो कर भगवान् गौतम स्वामी को वंदना-नमस्कार किया। तब गौतम स्वामी ने फरमाया—"हे महाशतक ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी इस प्रकार आख्यान करते हैं, भाषण करते हैं, विशेष कथन करते हैं, प्ररूपणा करते हैं कि संलेखना-संथारा किए श्रावक को सत्य होते हुए भी अप्रिय वचन बोलना नहीं कल्पता है। तुमने रेवती गाथापत्नी को सत्य किन्तु अप्रिय वचन कहे। अतः हे देवानुप्रिय ! उस दोष-स्थान की आलोचना प्रतिक्रमण कर प्रायश्चित्त कर के शुद्धिकरण करो।"

तए णं से महासयए समणोवासए भगवओ गोयमस्स "तहत्ति" एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता तस्स ठाणस्स आलोएइ जाव अहारिहं च पायच्छित्तं पडिवज्जइ। तए णं से भगवं गोयमे महासयगस्स समणोवासयस्स अंतियाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता रायगिहं णयरं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तएणं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ रायगिहाओ णयराओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

अर्थ—तब महाशतक ने भगवान् गौतम स्वामी द्वारा कहे हुए भगवान् महावीर स्वामी के आदेश को 'तहत्त'—आपका कथन यथार्थ है—कह कर विनयपूर्वक स्वीकार किया और गौतमस्वामी के पास उस दोष-स्थान की आलोचना की, योग्य प्रायश्चित्त ग्रहण किया। तब गौतमस्वामी अपने स्थान को पधारे, तथा भगवान् महावीर स्वामी को वंदना नमस्कार कर संयम-तप से आत्मा को भावित करते हुए रहने लगे। तत्पश्चात् किसी दिन भगवान् ने बाहर जनपद में विहार किया।

तए णं से महासयए समणोवासए बहूहिं सील जाव भावेत्ता वीसं वासाइं समणोवासयपरियायं पाउणित्ता, एक्कारस उवासगपडिमाओ सम्मं काएणं फासित्ता, मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता, आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे अरुणवडिंसए विमाणे देवत्ताए उववण्णे। चत्तारि पलिओवमाइं ठिई। महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ णिक्खेवो।

॥ सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं अट्ठमं अज्झयणं समत्तं ॥

अर्थ—उन महाशतक श्रमणोपासक ने श्रावक के बहुत-से व्रत एवं तपश्चर्या से आत्मा को भावित किया और बीस वर्ष की श्रावक-पर्याय का तथा ग्यारह उपासक-प्रतिमाओं का यथारीति सम्यक् पालन-स्पर्शन किया। मासिकी संलेखना से शरीर और कषायों को क्षीण करके मृत्यु के अवसर पर आलोचना प्रतिक्रमण कर, समाधिपूर्वक काल कर के सौधर्म देवलोक के अरुणावतंसक विमान में उत्पन्न हुए, जहाँ चार पल्योपम तक देव-स्थिति का उपभोग कर वे महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध बुद्ध मुक्त होंगे। श्री सुधर्मास्वामी फरमाते हैं कि हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से श्री उपासकदशांग के अष्टम अध्ययन के जो भाव मैंने सुने, वे ही तुम्हें कहे हैं।

विवेचन— इस अध्ययन में विचारणा के लिए अनेक दृष्टिकोण उपलब्ध हैं—वेदमोहनीय की विचित्रता, आहार का वेदोदय के साथ सम्बन्ध, आहार का चित्तवृत्ति के साथ सम्बन्ध, ज्ञान होने पर भी कषायोदय से अविवेकपूर्ण भाषण, आदि।

॥ अष्टम अध्ययन सम्पूर्ण ॥

नवम अध्ययन

श्रमणोपासक नंदिनीपिता

णवमस्स उक्खेवो। एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं सावत्थी णयरी कोट्ठए चेइए जियसत्तुराया। तत्थ णं सावत्थीए णयरीए णंदिणीपिया णामं गाहावई परिवसइ, अड्ढे चत्तारि हिरण्णकोडीओ णिहाणपउत्ताओ चत्तारि हिरण्ण-कोडीओ वुड्ढिपउत्ताओ चत्तारि हिरण्णकोडीओ पवित्थरपउत्ताओ चत्तारि वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं, अस्सिणी भारिया। सामी समोसढे, जहा आणंदो तहेव गिहिधम्मं पडिवज्जइ। सामी बहिया विहरइ।

अर्थ—हे जंबू! उस समय श्रावस्ती नगरी के बाहर कोष्टक नामक उद्यान था। जितशत्रु राजा था। उस श्रावस्ती नगरी में 'नंदिनीपिता' नामक गाथापति रहा करता था, जो आढ्य यावत् अपराभूत था। उसके पास चार करोड़ स्वर्ण-मुद्राएं भण्डार में, चार करोड़ व्यापार में, तथा चार करोड़ की घर-बिखरी थी। चार गो व्रज थे। उनकी भार्या का नाम 'अश्विनी' था। भगवान् महावीर स्वामी श्रावस्ती पधारे। आनन्द की भाँति नन्दिनीपिता ने भी श्रावकधर्म स्वीकार किया। भगवान् जनपद में विचरने लगे।

तए णं से णंदिणीपिया समणोवासए जाए जाव विहरइ। तए णं तस्स णंदिणीपियस्स समणोवासगस्स बहूहिं सीलव्वयगुण जाव भावेमाणस्स चोद्दस संवच्छराइं वइक्कंताइं तहेव जेट्ठं पुत्तं ठवेइ, धम्मपण्णत्तिं वीसं वासाइं परियागं पाणत्ता अरुणगवे विमाणे उववाओ। महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ। णिक्खेवो।

॥ सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं णवमं अज्झयणं समत्तं ॥

अर्थ—नंदिनीपिता व्रत धारण कर श्रमणोपासक बन गए। जीवाजीव के ज्ञाता यावत् साधु-साध्वियों को प्रासुक-एषणीय आहार बहराने लगे। चौदह वर्ष के बाद ज्येष्ठ-पुत्र को कुटुम्ब का मुखिया नियुक्त कर दिया। उपासक की ग्यारह प्रतिमाओं की आराधना तथा अन्य तपश्चर्या आदि से बीस वर्ष तक की श्रमणोपासक पर्याय का पालन कर, मासिकी संलेखना से सौधर्म देवलोक के अरुणगवे विमान में उत्पन्न हो गए। वहाँ चार पल्योपम की स्थिति भोग कर और महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होंगे।

॥ नवम अध्ययन समाप्त ॥

दसम अध्ययन

श्रमणोपासक सालिहीपिता

दसमस्स उक्खेवो एवं खलु जंबू ! तेणं काले णं तेणं समएणं सावत्थी णयरी, कोट्ठए चेइए, जियसत्तु राया। तत्थ णं सावत्थीए णयरीए सालिहीपिया णामं गाहावई परिवसइ, अड्ढे दित्ते, चत्तारि हिरण्णकोडीओ णिहाणपउत्ताओ चत्तारि हिरण्णकोडीओ वुड्ढिपउत्ताओ चत्तारि हिरण्णकोडीओ पवित्थरपउत्ताओ चत्तारि वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं, फग्गुणी भारिया। सामी समोसढे, जहा आणंदो तहेव गिहिधम्मं पडिवज्जइ।

अर्थ—हे जम्बू ! उस समय श्रावस्ती नगरी थी। कोष्टक उद्यान था। जितशत्रु राजा था। वहाँ 'सालिहीपिता' नामक गाथापति रहते थे, जो आढ्य यावत् अपराभूत थे। उनके पास चार करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं का भण्डार, चार करोड़ व्यापार में, चार करोड़ घरबिखरी थी। चार गो-व्रज थे। 'फाल्गुनी' नामक भार्या थी। उस समय भगवान् महावीर स्वामी का वहाँ पदार्पण हुआ। आनंद की भाँति सालिहीपिता ने श्रावक-व्रत धारण किए। भगवान् का विहार हो गया।

जहा कामदेवो तहा जेट्ठं पुत्तं ठवेत्ता। पोसहसालाए समणस्स भगवओ महावीरस्स धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। णवरं णिरुवसग्गाओ, एक्कारसवि उवासगपडिमाओ तहेव भाणियव्वाओ। एवं कामदेवगमेणं णेयव्वं जाव सोहम्मे कप्पे अरुणकीले विमाणे देवत्ताए उववण्णे। चत्तारि पलिओवमाइं ठिई। महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ।

॥ उवासगदसाणं दसमं अज्झयणं समत्तं ॥

अर्थ—कामदेव के समान सालिहीपिता ने भी ज्येष्ठ-पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंप कर भगवान् की धर्मप्रज्ञप्ति स्वीकार की। उपसर्ग-रहित उपासक की ग्यारह प्रतिमाओं तथा तपश्चर्या से आत्मा को भावित किया। सारा वर्णन कामदेव के समान जानना चाहिए। विशेषता यह कि मनुष्यायु पूर्ण कर के वे सौधर्म स्वर्ग के अरुणकील विमान में देव रूप में उत्पन्न हुए। वे चार पल्योपम की देव-स्थिति का उपभोग करेंगे और महाविदेह-क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होंगे।

॥ दसम अध्ययन सम्पूर्ण ॥

उपसंहार

दसण्ह-वि पणरसमे संवच्छरे वट्टमाणाणं चिंता। दसण्ह वि वीसं वासाइं समणोवासयपरियाओ। एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं दसमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते। उवासगदसाओ समत्ताओ।

उवासगदसाणं सत्तमस्स अंगस्स एगो सुयखंधो दस अज्झयणा एक्कसरगा दससु चेव दिवसेसु उद्दिस्सिज्जंति तओ सुयखंधो समुद्दिस्सिज्जइ अणुण्णविज्जइ दोसु दिवसेसु अंगं तहेव ॥

अर्थ—दसों ही श्रावकों को पन्द्रहवें वर्ष में निवृत्ति धारण करने की इच्छा हुई। दसों ने बीस वर्ष की श्रमणोपासक-पर्याय का पालन किया। श्री उपासकदशांग का उपसंहार करते हुए भगवान् सुधर्मा स्वामी अपने प्रथम प्रधान शिष्य जम्बूस्वामी से फरमाते हैं कि सातवें अंग उपासकदशांग का भगवान् ने यह अर्थ फरमाया है। इस उपासगदशा नामक सातवें अंग सूत्र में एक श्रुतस्कंध तथा दस अध्ययन कहे गए हैं। इनका अध्ययन दस दिनों में पूरा होता है।

॥ श्री उपासकदशांग सूत्र समाप्त ॥

उपासकदशांग का संक्षेप में परिचय

पूर्वाचार्य कृत गाथाएँ

श्रमणोपासकों के नगर

"वाणियगामे चंपा दुवे य वाणारसीए णयरीए।
आलभिया य पुरवरी, कंपिल्लपुरं च बोद्धव्वं ॥१॥
पोलासं रायगिहं, सावत्थीए पुरीए दोण्णि भवे।
एए उवासगाणं, णयरा खलु होंति बोद्धव्वा ॥२॥

अर्थ—१ आनन्दजी श्रमणोपासक वाणिज्य ग्राम के थे, २ कामदेवजी चम्पानगरी के, ३ चूलनीपिताजी वाराणसी के, ४ सुरादेवजी भी वाराणसी के, ५ चूलशतकजी आलभिया के ६ कुण्डकोलिकजी कम्पिलपुर के, ७ सकडालपुत्रजी पोलासपुर के ८ महाशतकजी राजगृह के ९ नन्दिनीपिताजी और १० सालिहीपिताजी श्रावस्ति नगरी के निवासी थे।

श्रावकों की पत्नियों के नाम—

सिवणंद-भद्द-सामा, धण्ण-बहुल-पूस-अग्गिमित्ता य।
रेवइ अस्सिणि तह फग्गुणी य भज्जाण णामाइं ॥३॥

१ शिवानन्दा २ भद्रा ३ श्यामा ४ धन्ना ५ बहुला ६ पूषा ७ अग्निमित्रा ८ रेवति ९ अश्विनी और १० फल्गुनी।

उपसर्ग—

ओहिण्णाण-पिसाए, माया-वाहि-धण-उत्तरिज्जे य।
भज्जा य सुव्वया दुव्वया णिरुवसग्गया दोण्णि ॥४॥

१ अवधिज्ञान का २ पिशाच का ३ माता का ४ व्याधि का ५ धन का ६ वस्त्र

और मुद्रिका का ७ भार्या का ८ रेवती पत्नी का ९—१० के कोई उपसर्ग नहीं हुआ‡ ।

सौधर्म-स्वर्ग में उत्पन्न हुए उन विमानों के नाम—

अरुणे अरुणाभे खलु, अरुणप्पह-अरुणकंत सिट्ठे य ।
अरुणज्झए य छट्ठे, भूय-वडिंसे गवे कीले ॥५॥

१ अरुण २ अरुणाभ ३ अरुणप्रभ ४ अरुणकांत ५ अरुणशिष्ट ६ अरुणध्वज ७ अरुणभूत ८ अरुणावतंस ९ अरुणगव और १० अरुणकिल विमान में उत्पन्न हुए ।

गोधन की संख्या

चाली सट्ठि असीई, सट्ठी सट्ठी य सट्ठि दस सहस्सा ।
असिई चत्ता चत्ता, एए वइयाण य सहस्साणं ॥६॥

१ चालीस हजार २ साठ हजार ३ अस्सी हजार ४ साठ हजार ५ साठ हजार ६ साठ हजार ७ दस हजार ८ अस्सी हजार ९ चालीस हजार और १० चालीस हजार गौएं थीं ।

श्रावकों की धन सम्पत्ति—

बारस अट्ठारस चउवीसं तिविहं अट्ठरसाइ णेयं ।
धण्णेण ति चोव्वीसं, बारस बारस य कोडीओ ॥७॥

१ बारह हिरण्यकोटि २ अठारह हिरण्यकोटि ३ चौबीस हिरण्यकोटि ४ अठारह हिरण्यकोटि ५ अठारह हिरण्यकोटि ६ अठारह हिरण्यकोटि ७ एक हिरण्यकोटि ८ चौबीस हिरण्यकोटि ९ बारह हिरण्यकोटि और १० के बारह हिरण्यकोटि धन था ।

उपभोग परिभोग के नियम—

उल्लण-दंतवण-फले अभिंगणुव्वट्टणे सिणाणे य ।
वत्थ-विलेवण-पुप्फे, आभरणं धूव-पेज्जाइ ॥८॥

‡ १ आनन्दजी को किसी प्रकार का उपसर्ग नहीं हुआ । गौतमस्वामी से सम्वाद होना एक विशेष घटना है, उपसर्ग नहीं । यही बात कुण्डकौलिकजी के विषय में है । अन्य छः को देवकृत उपसर्ग हुए । माता व्याधि आदि तो चलित होने के निमित्त थे । अतएव चार को उपद्रव-रहित मानना उचित लगता है—डोशी .

भक्खोयण-सूव-घए सागे माहुर-जेमणऽण्ण-पाणे य ।
तंबोले इगवीसं, आणंदाईण अभिग्गाहा ॥९॥

सभी श्रमणोपासकों के—१ शरीर पोंछने का अंगोछा २ दातुन ३ फल ४ तेल अभ्यंगन ५ उबटन ६ स्नान ७ वस्त्र ८ चन्दनादि विलेपन ९ पुष्प १० आभरण ११ धूप १२ पान १३ मिष्ठान्न १४ चावल १५ दाल १६ घृत १७ शाक १८ मधुरक (फल) १९ भोजन २० पानी और २१ मुखवास ।

अवधिज्ञान का परिमाण—

उड्ढं सोहम्मपुरे लोलुए अहे उत्तरे हिमवंते ।
पंचसए तह तिदिसिं, ओहिण्णाणं दसगणस्स ॥१०॥

वे श्रमणोपासक अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक में सौधर्म-देवलोक तक, अधोलोक में रत्नप्रभा पृथिवी के लोलुयच्चुय नरकावास तक, उत्तर में हिमवंत वर्षधर पर्वत तक और पूर्व-पश्चिम और दक्षिण में पांच सौ योजन लवणसमुद्र में † जान-देख सकते थे ।

प्रतिमाओं के नाम—

दंसण-वय-सामाइय पोसह-पडिमा-अबंभ-सच्चित्ते ।
आरंभ-पेस-उद्दिट्ठ-वज्जए समणभूए य ॥११॥
इक्कारस पडिमाओ, वीसं परियाओ अणसणं मासे ।
सोहम्मे चउपलिया, महाविदेहंमि सिज्झिहिइ" ॥१२॥

१ दर्शन प्रतिमा २ व्रत प्रतिमा ३ सामायिक ४ पौषध ५ कायोत्सर्ग ६ ब्रह्मचर्य ७ सचित्त आहार-त्याग ८ स्वयं आरम्भ-वर्जन ९ भृतक प्रेष्यारंभ वर्जन १० उद्दिष्ट-भक्त वर्जन और ११ श्रमणभूत प्रतिमा ।

† यहाँ अन्तर मालूम देता है । सूत्र के अ. ८ में महाशतक श्रमणोपासक को एक हजार योजन तक लवणसमुद्र में देखना लिखा है । अन्य सभी को पाँच सौ योजन है ।

परिशिष्ट

तुंगिका के श्रमणोपासक

देवाधिदेव श्रमण भगवान् महावीर प्रभु के उपासकों में, तुंगिका नगरी के श्रमणोपासकों का उल्लेख भगवती सूत्र श. २ उ. ५ में आया है। उनकी पौद्गलिक और आत्मिक ऋद्धि का मार्मिक वर्णन है। विषय के अनुरूप होने के कारण यह विषय यहाँ उद्धृत किया जाता है; —डोशी।

"तए णं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ णयराओ गुणसिलाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवय विहारं विहरई।

ते णं काले णं ते णं समए णं तुंगिया णामं णयरी होत्था, वण्णओ। तीसे णं तुंगियाए णयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभागे पुप्फवइए णामं चेइए होत्था, वण्णओ। तत्थणं तुंगियाए णयरीए बहवे समणोवासया परिवसंति, अड्ढा दित्ता वित्थिण्णविपुलभवणसयणाऽसणजाणवाहणाइण्णा, बहुधण बहुजायरूवरयया, आओगपओग-संपउत्ता, विच्छड्डिय विपुल-भत्तपाणा, बहुदासीदास-गो-महिस-गवेलयप्पभूया, बहुजणस्स अपरिभूया।"

अर्थ—उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी राजगृह नगर के गुणशील चैत्य से निकल कर अन्य जनपद में विचर रहे थे।

उस समय तुंगिका नाम की नगरी थी। उस नगरी के बाहर पूर्वोत्तर दिशा में पुष्पवती नाम का उद्यान था। तुंगिका नगरी में बहुत-से श्रमणोपासक निवास करते थे। वे श्रमणोपासक आढ्य (धन-धान्य से परिपूर्ण) दीप्त (देदीप्यमान) थे। उनके भवन विशाल-विस्तीर्ण थे। शयन आसन यान वाहन आदि सुख के साधन भी उनके पास बहुत

और उत्तम थे। धन एवं सोना-चांदी से भी वे परिपूर्ण थे। वे लेन-देन एवं ब्याज पर धन लगाने का व्यवसाय भी बहुत करते थे। उनके यहाँ बहुत लोग भोजन करते थे। इसलिए जूठन में भी भोजन बहुत रह जाता था। उनके दास-दासी, गाय, भैंस, भेड़-बकरियाँ भी बहुत थे। वे समर्थ थे। उन्हें कोई भी विचलित नहीं कर सकता था।

श्रमणोपासकों की आत्मिक सम्पत्ति

"अभिगयजीवाऽजीवा, उवलद्ध पुण्ण-पावा आसव-संवर-णिज्जर-किरियाऽहिगरण-बंध-मोक्ख-कुसला। असहेज्जदेवाऽसुर-णाग-सुवण्ण-जक्ख रक्खस-किण्णर-किंपुरुष-गरुल-गंधव्व-महोरगाईएहिं णिग्गंथाओ पावयणाओ अणतिक्कणिज्जा, णिग्गंथे पावयणे णिस्संकिया णिक्कंखिया णिव्वितिगिच्छा, लद्धट्ठा, गहियट्ठा, पुच्छियट्ठा, अभिगयट्ठा, विणिच्छियट्ठा, अट्ठिमिंजपेमाणुरागरत्ता। "अयमाउसो! णिग्गंथे पावयणे अट्ठे, अयं परमट्ठे, सेसे अणट्ठे। उसियफलिहा, अवंगुय दुवारा, चियत्तंतेउरघरप्पवेसा। बहूहिं सीलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठ-पुण्णमासिणीसु परिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा, समणे णिग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह कंबल-पायपुंछणेणं पीढ फलग-सेज्जा-संथारएणं ओसह-भेसज्जेणं पडिलाभेमाणा अहापडिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।"

सूत्रकार ने उपरोक्त शब्दों में उन आदर्श श्रमणोपासक महानुभावों की भव्य आत्म-ऋद्धि का अच्छा परिचय दिया है।

अभिगय जीवाऽजीवा—उन श्रमणोपासकों ने जीव और अजीव तत्त्व का स्वरूप जानने के साथ अभिगत—आत्मा में स्थापित कर लिया था।

उवलद्धपुण्ण-पावा—पुण्य और पाप तत्त्व का अर्थ और आशय प्राप्त कर लिया था। पुण्य और पाप के निमित्त, भाव, क्रिया और परिणाम समझ कर हृदयंगम कर चुके थे।

आसव-संवर-णिज्जर.... मोक्खकुसला—आस्रव-संवर-निर्जरा-क्रिया अधिकरण-

बंध और मोक्ष के स्वरूप, साधन, आचरण, बंधन और मुक्ति का स्वरूप वे समझे हुए थे। वे आर्हत् सिद्धांत में दक्ष थे, निपुण एवं विशेषज्ञ थे। आत्म-परिणत ज्ञान के वे धारक थे।

वे तत्त्वज्ञ, तत्त्वाभ्यासी, तत्त्वानुभवी, तत्त्वसंवेदक एवं तत्त्वदृष्टा विद्वान थे।

आत्मतत्त्व, आत्मभाव, आत्मा का स्वरूप, आत्मा की वैभाविक और स्वाभाविक दशा का ज्ञान, आत्मा को अनात्म द्रव्य से संबद्ध करने वाले भावों और आचरणों एवं मुक्त होने के उपाय, मुक्तात्मा का स्वरूप आदि के वे तलस्पर्शी ज्ञाता थे। हेय-ज्ञेय और उपादेय का विवेक करने में निपुण थे।

असहेज्ज देवासुर.......वे श्रमणोपासक सुख-दुःख को अपने कर्मोदय का परिणाम मान कर शांतिपूर्वक सहन करते थे। परन्तु किसी देव-दानव की सहायता की इच्छा भी नहीं करते थे। वे अपने धर्म में इतने दृढ़ थे कि उन्हें देव-दानवादि भी चलित नहीं कर सकते थे।

णिग्गंथे पावयणे णिस्संकिया—निर्ग्रन्थ-प्रवचन—जिनेश्वर भगवंत के बताये हुए सिद्धांत में दृढ़ श्रद्धावान् थे। उनके हृदय में सिद्धांत के प्रति किसी प्रकार की शंका नहीं थी। वे जिनधर्म के अतिरिक्त अन्य किसी भी धर्म की आकांक्षा नहीं रखते थे। क्योंकि निर्ग्रन्थ-प्रवचन में उनकी पूर्ण श्रद्धा थी। धर्माराधन के फल में उन्हें तनिक भी सन्देह नहीं था।

लद्धट्ठा गहियट्ठा........उन्होंने तत्त्वों का अर्थ प्राप्त कर लिया था। जिज्ञासा उत्पन्न होने पर भगवान् अथवा सर्वश्रुत या बहुश्रुत गीतार्थ से पूछ कर निश्चय किया था। सिद्धांत के अर्थ को भलि प्रकार समझ कर धारण कर लिया था। उन्होंने तत्त्वों का रहस्य-ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

अट्ठिमिंज पेमाणुरागरत्ता—उन एक भवावतारी श्रमणोपासकों की धर्मश्रद्धा इतनी बलवती थी कि उनके आत्म-प्रदेशों में धर्म-प्रेम गाढ़ से गाढ़तर और गाढ़तम हो गया था। उसके प्रभाव से उनकी हड्डियाँ और मज्जा भी उस प्रशस्त राग से रंग गई थी। भवाभिनन्दियों और पुद्‌गल राग-रत्त जीवों के तो अप्रशस्त राग से आत्मा और अस्थियाँ मैली-कुचैली बनी रहती है। जब वह मैल कम होता है तब आत्मा में धर्मप्रेम जागता है।

ज्यों-ज्यों धर्म-राग बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों कालिमा हट कर प्रशस्त—शुभ रंग चढ़ता है, फिर एक समय ऐसा भी आता है कि सभी राग-रंग उड़ कर विराग-दशा हो जाती है। यह उस नष्ट होती हुई कर्म-कालिमा की सुधरी हुई अवस्था है, जिसमें दुःखद-परिणाम वाली कर्मली प्रकृति धुल कर स्वच्छ बनाती है और उसके साथ शुभ-रंग का योग होता है। फिर कालिमा का अंश मिटा कि शुभ भी साथ ही मिट कर आत्म-द्रव्य शुद्ध हो जाता है।

अयमाउसो ! णिग्गंथे पावयणे........उनके धर्म-राग की उत्कृष्टता का प्रमाण यह कि जब साधर्मीबन्धु परस्पर मिलते अथवा किसी के साथ उनकी धर्म-चर्चा होती, तो उनके हृदय के अन्तस्तल से यही स्वर निकलता—"आयुष्मन् ! यदि संसार में कोई सारभूत अर्थ है, तो एकमात्र निर्ग्रन्थ-प्रवचन = जिनधर्म ही है। यही परम अर्थ—उत्कृष्ट लाभ है। शेष सभी (धन-सम्पत्ति, कुटुम्ब-परिवार एवं अन्य मत) अनर्थ = दुःखदायक हैं।

ऊसियफलिहा अवंगुयदुवारा—वे उदार थे, दाता थे। उनके घर के द्वार याचकों के लिये खुले रहते थे। पाखण्डियों एवं कुप्रावचनिकों से उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं था। वे आर्हत्-धर्म के पण्डित थे और तत्त्वचर्चा में किसी अन्य प्रावचनिक से दबते नहीं थे।

चियत्तंतेउरघरप्पवेसा—जनता में उनकी प्रतीति ऐसी थी कि वे कार्यवश किसी के घर में अथवा राज के अन्तःपुर में प्रवेश करते, तो जनता को उनके चरित्र में किसी प्रकार की शंका नहीं होती। वे अपने स्वदार-संतोष व्रत में दृढ़ थे और जनता के विश्वास-पात्र थे।

वे अनेक प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान, अणुव्रत-गुणव्रत, सामायिक, पौषधोपवास और अष्टमी चतुर्दशी अमावस्या और पूर्णिमा को प्रतिपूर्ण पौषध व्रत का पालन करते थे और श्रमण-निर्ग्रंथ—साधु-साध्वी को अचित निर्दोष आहार-पानी, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पाद-प्रोंछन, पीठ-फलक स्थान-संस्तारक औषध-भेषज आदि भक्तिपूर्वक प्रतिलाभित करते रहते थे, और यथाशक्ति तप करते हुए अपनी आत्मा को पवित्र करते रहते थे।

भगवान् के इन श्रमणोपासकों का चरित्र इस उपासकदशांग सूत्र के साथ जोड़ने का यही आशय है कि हम उनके चरित्र का मनन करें और इनका अवलम्बन लेकर अपना जीवन सुधारें। अन्य विचारों और इधर-उधर देखना छोड़ कर अपने इस आदर्श को ही अपनावेंगे तो हमारी नय्या पार हो जायगी।

श्री कामदेवजी की सज्झाय

(अध्ययन २ के आधार पर)

श्रावक श्री वीर ना चम्पा ना वासीजी । अन्तरा ।
एक दिन इन्द्र प्रशंसियोजी, भरी सभा के मांय ।
दृढ़ताई कामदेव नी, कोई असुर सके न चलाय ।।श्रा. ।।१।।
सरध्यो नहीं एक देवताजी, रूप पिशाच बनाय ।
कामदेव श्रावक कने आयने, पौषधशाला के मांय ।।२।।
हूं भो ! रे कामदेवजी ! थाने कल्पे नहीं रे कोय ।
थारे धरम नहीं छोड़वो पण, हूं छोड़ावसूं तोय ।।३।।
रूप पिशाच नो देखने जी, डरिया नहीं मन मांय ।
जाण्यो मिथ्यात्वी देवता, दियो ध्यान में चित्त लगाय ।।४।।
एकबार मुखसूं कह्यो, हम देव कहे वारंवार ।
कामदेव बोल्या नहीं, जद देव आयो छे बहार ।।५।।
हाथी रूप वैक्रेय कियोजी, पिशाच पणो कियो दूर ।
पौषधशाला में आयने, यो बोले वचन करूर ।।६।।
मन करी चलिया नहीं, तब हाथी सूंड में झाल ।
पौषधशाला के बाहिरे, दियो आकाश मांहि उछाल ।।७।।
दंतशूल पर झेलने जी, कमल नो पेरे रोल ।
उज्ज्वल वेदना उपनी पण, रह्या ध्यान अडोल ।।८।।
गज रूप तजी सर्प हुवोजी, कालो महा विकराल ।
डंक दियो कामदेव ने, यो क्रोधी महा चंडाल ।।९।।

उज्जवल वेदना ऊपनीजी, डगिया नहीं तिल मात्र ।
सुर थाकी प्रकट हुवोजी, देवता रूप साक्षात ।।१०।।
करजोड़ी यूं विनवे, थारा सुरपति किया रे वखाण ।
में मूढ़मति सरध्यो नहीं, थाने उपसर्ग दियो आण ।।११।।
मन करी डगिया नहीं जी, थें धर्म पाया परिमाण ।
खमो अपराध माहरो कही, देव गयो निज स्थान ।।१२।।
वीर जिनन्द समोसर्याजी, कामदेव वन्दन आय ।
वीर कहे उपसर्ग दियोजी, देव मिथ्यात्वी आय ।।१३।।
हां स्वामीजी सांच छे, जब श्रमण श्रमणी बुलाय ।
घर बैठा उपसर्ग सह्यो, इम प्रशंसे जिनराय ।।१४।।
बीस वरस शुद्ध पालियाजी, श्रावक ना व्रत बार ।
देवलोक मां उपन्या, चवी जासे मोक्ष मझार ।।१५।।
मरुधर देश सुहामणोजी, जयपुर कियो चोमास ।
अष्टादस शत छयासीए, खुशालचन्द जोड़ी प्रकाश ।।१६।।